

रजत रश्मि

[जैन सस्कृति के चुने हुए विषयों का विश्लेषण]

जैन प्रकाशन, मन्दसौर (म०प्र०)

आभार

परम पुण्य मन्यासः श्री. भानुविनयजी महाराजों के प्रति जिनने अपने जीवन में त्याग, तप, ज्ञान एवं सघोस्थान की उज्ज्वल उपलब्धियों के कीर्तिमान स्थापित किये हैं, मैं हार्दिक कृतज्ञता व्यक्त करता हूँ। उनके द्वारा प्रदत्त ज्ञान एवं उनके प्रथा से प्राप्त उद्धरणों ने ही इस पुस्तक को अधिक मियाशौल रूप दिया है। आशा है उनकी प्रेरणा मेरे लिये सदैव जीवन्त रहेगी।

सशोधक

जैनरत्न श्री राजमलजा लोढा,

शास्त्री, साहित्य भूषण,

संपादक 'ध्वज'

★

प्रकाशक

जैन प्रकाशन

मदसौर (म० प्र०)

★

मुद्रक

भारत प्रिंटिंग प्रेस

मदसौर (म० प्र०)

★

आवर्तन

प्रथम १९६७

★

मूल्य

एक रुपया

मगल मन्तव्य

जैन संस्कृति आभवादा संस्कृति है। आध्यात्मिक मूल्यों के धरातल पर उसका विकास हुआ है। नीति, न्याय एवं प्रमाणिता इसके प्राण हैं। स्व और पर के बह्येयण का तीव्र भावना इसकी विशेषता है। धर्म के उन्वात्सर्गान इसका शृंगार किया है। जीवन के परमोच्च लक्ष्यों की ओर यह अपरोक्ष हुई है। शुद्धता एवं पवित्रता इसकी सहचरिया रही हैं। युगों व संदियों के प्रवाह में भी इसका मस्तक 'सदैव उत्तम' रहा है। इतिहास के संशोधन और सत्ताओं के परिवर्तन का हमें भुवा नहीं पाये हैं। यह विश्व के विचार मंच पर सर्वोत्कृष्ट रूप गृहण कर सदैव अपनी विजय वैजयन्ति फहराती रही है।

इसकी गौरवशाली रूप इसकी अपनी वैशिष्ट्यताओं के कारण ही रहा है। अहिंसा जिस रूप में निरंतर हुआ, सत्य का जिस गहराई तक अवेषण हुआ या मानव धर्म्याण की प्रबल भावना जिस उच्च रूप में व्यापक बना— उसीने जैन संस्कृति को अधिकाधिक परिमार्जित किया है।

प्रस्तुत प्रमाण जैन संस्कृति के कुछ विषयों का विशारिक विश्लेषण लेकर प्रस्तुत हा रहा है। आधुनिक पद्धति से सोचने व समझने वाली के सम्मुख श्री सुरेंद्र लोढ़ा का नूतन शैली जैन दर्शन के विविध विषयों को स्पष्ट करने में सफल होगी। यहा शुभसोमना ।

सियाणा (राजस्थान) — मुनि जयप्रसन्नविजय 'धर्मला'

पवित्र

प्रे

र

III...

जैन धर्म आचार - विचार एवं व्यवहार की शुद्धता की प्रधानता देता है। जीवन क्षणिक है। वह जन्म और मृत्यु के दो अटल सत्या की सीलर्चा में जकड़ा हुआ है। जो कुछ दृश्य है वह नाशवन्त है, मिटने वाला है। जैन धर्म इस जीवन को जयस्वी रूप में प्राजलित करने हेतु प्रेरित करता है। वह इसे अफर्मण्य, आचार होन या अनैतिक बनकर गबाने की आक्षा नहीं देता। उसने जीवन को शुद्धता की कसौटी पर कसा है। उच्च आचार ही जीवन की सफलता का मापदण्ड है।

जीवन की सार्थकता मोक्ष प्राप्ति है। अद्वितीय एवं अन्मोल मानव जीवन यदि सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र्य की आराधना के द्वारा अभशील हो सो मोक्ष पथ का साक्षात्कार भी असंभव नहीं है। जैन धर्म की शीतल ज्योत्सना ने परमोच्च लक्ष्य का ज्योतिर्मय किया है। अपने आप में इसी ज्योत्सना का सगोपन कर "रजत रश्मि" प्रकट हो रही है आशा है विषयों का अध्ययन एवं प्रतिपादन पाठकों के सम्मुख एक स्वच्छ चित्र बनाने का प्रयत्न कर लेगा। इसी मंगल आराक्षा के साथ



रजत रत्न
(इन्द्र देव)



ने
।
मुप
है ।
श्रुति
है ।
का
है ।
वण्ड
युत्
प्य
होना

विद्युत् शक्तियों का विश्लेषण

विज्ञान का विकास अपने
चरमोत्कर्ष पर है ।

विज्ञान की उपलब्धियाँ के सम्मुख
समस्त ससार नतमस्तक है ।
विज्ञान के कारण मानव सृष्टि
का स्वरूप तब बदल गया है ।
सभी दिशाओं में विज्ञान की
सफलताओं के स्वरूप रहे हैं ।
विज्ञान प्रदत्त शक्तियों में प्रचण्ड
क्षमताओं के दर्शन हुए हैं । विद्युत्
में कितनी प्रचण्ड ताकत है ? एक
बटन को दबाते ही भूकल का कौना

कौना जगमगा उठता है। औद्योगीकरण का प्राण विद्युत् शक्ति वन चुम्बी है। मानव को अधिनाधिक भीति सभृद्धि और सुग्न के साधन प्रदान करने में यह एक सग्न शक्ति पुञ्ज के रूप में सम्मुख जाइ है। चुम्बकत्व का शक्ति से व कार्य सम्पन्न हो रहें हैं तिनकी धल्पना १८ वीं सदा तक मानव मरिक्क म प्रविष्ट भी नहीं होपाइ थी। आज वैज्ञानिक परमाणु (Atom) को पकड़कर अतिशील है। एक एटम अथवा उद्जन वम्ब विज्ञाने अविनाशभाग को विनाशनी दावाग्नि से घेर सकता है। वसा, प्रथेपगात्रा या मिसाइल के रूप में एटम, इलेक्ट्रॉन आदि का श्रमता आ का भयकर प्रदर्शन हो रहा है। ये सभी विज्ञान की शक्तियाँ हैं जो जड़ पदार्थों के अन्तस्थल से प्रकृति होतों हैं।

लेकिन

इनसे भी कोई बड़ी शक्ति है जो भगवान महावीर में निहित थी। तिनने निरस्त्र और निशस्त्र भारत में अहिंसा का प्रतिपादन किया था। यदि रन्धुक की गोली ही एक मात्र शक्ति पद होता तो भगवान महावीर शक्ति सम्पन्न राजपदा से उपर उठकर एक यागी व साधक का रूप क्यों लेते? वह कौनसी शक्ति थी जो बड़े बड़े संघर्षों साहसियों की त्यागी व सन्यागी महावीर के चरणों में मुखा लेता थी?

ऐसी ही काइ शक्ति, महात्मा गांधी में थी जिनने कृशनाय शरीर के पीछे सन् १९४० में हजारों-लाखों भारतवासी स्वतन्त्रता के लिये एक जुट हो चल पड़े थे। क्या

महात्मा गांधी के पास सैनिकों की लम्बी कतारें थीं ? क्या वम धाम्द के भण्डार थे ? क्या साधन और सुविधाएँ थीं ? नहीं—
 किन्तु फिर भी क्या कारण था कि गांधी जा ने अंग्रेजों की
 लौह शक्ति का सामना “करो और मरो” के त्रिदाशाल निनाद
 से करन का प्रयास ? किदा ? अंग्रेजा की लाठी और गीली का
 प्रत्युत्तर सत्याग्रह तथा अहिंसक संघर्ष से दिया ।

स्वातंत्र्य सपूत भगतसिंह ने एसेम्बली में वम फेंका था भगत
 सिंह चाहते तो दर्शक गैलरी से भाग गड़े होते किन्तु उनने भागने
 से अधिक उचित पुलिस के सम्मुख प्रत्यार्पण समझा । क्या
 भगतसिंह अनभिज्ञ थे कि पुलिस की गिरफ्त के बाद उनके लिये
 प्राण दण्ड का पुरस्कार तय्यार है ? पुलिस की हथकड़ियाँ ने
 जख्म जाने क बाद उनका स्थान फाँसी का फन्दा ही होगा ?
 वे भरी भाति इस तथ्य से परिचित थे । फिर क्या उनने अपने
 आपनों मौत के मुह म दवेला ? इतिहास क घटनाक्रम का
 आज ताबिल दृष्टि से निरलेपित करने की आवश्यकता है ।

वास्तविक तथ्य तो यह है कि वमों क गारुदा की शक्ति से
 अधिक प्रभावकारी, उच्च एवं परिष्ठ कह शक्तियाँ हैं—निष्ठ प्रेम,
 सहानुभूति, धैर्य, क्रोध, क्षमा, सहनशालता, दया, यात्मन्य उक्त
 जना आदि रूपों में जाना और पहिचाना जाता है । सामने एक
 दूर व्यक्ति भरा हुए पिस्तौल लेकर आ रहा है—उसका अगुला
 पिस्तौल के अश्व पर स्थिर है और वह गोली दागने हेतु तय्यार है
 किन्तु आपके मृदु वचनों और उत्तम प्रभाव के कारण उसकी अगुली
 बिना गोली दागे ही अश्व पर से नीचे खिसक समता है । यदि

कौना चमगा उठता है। औद्योगीकरण का प्राण विद्युत् शक्ति बन चुकी है। मानव को अधिकाधिक भौतिक समृद्धि और सुख के साधन प्रदान करने में यह एक महान् शक्ति पुञ्ज के रूप में सम्मुख आई है। चुम्बकत्व या शक्ति से वे कार्य सम्पन्न हो रहे हैं जिनकी कल्पना १८ वीं सदी तक मानव मस्तिष्क में प्रसिद्ध भी नहीं हो पाई थी। आज वैज्ञानिक परमाणु (Atom) को परबलर प्रतिगीत है। एक एमएम अथवा उद्जन वस्तु विद्युत् अधिकांशभाग को प्रिनाशनी दायग्न से घेर सकता है। वम, प्रश्लेषगाम्बा या मिसाइल के रूप में एम, श्लेस्ट्रॉन आदि की क्षमता का भयकर प्रदर्शन हो रहा है। ये सभी विज्ञान की शक्तियाँ हैं जो जड़ पदार्थों के अन्तस्थल में प्रसृजित होती हैं।

लेकिन

इनसे भी कोई बड़ी शक्ति है जो भगवान् महावीर में निहित थी। तिनने निरन्ध और निशस्त्र भारतमें अहिंसानी तातिका प्रित्वा किया था। यदि बलुष की गौली हा एक मात्र शक्ति केन्द्र होता तो भगवान् महावीर शक्ति सम्पन्न राचपदा से उपर उठकर एक यागो व सार्धने का रूप धर्यो लेते ? वह कौनसी शक्ति थी जो उन्हें वड़े सम्राट् राहुकारों को त्यागो व सन्यासी महावीर के चरणों में मुखा प्रेतो थी ?

एसी ही कोई शक्ति महात्मा गांधी में थी जिनने कृशनाय शरीर के पाछे सन् १९४० में हजारा-लाखों भारतवामी स्वतंत्रता सपना में भाग लेने के लिये एक जुट हो चल पडे थे। क्या

महात्मा गांधी के पास सैनिकों की लम्बी बतारें थीं ? क्या दम धारूद के भण्डार थे ? क्या साधन और सुविधाएँ थीं ? नहीं— किन्तु फिर भी क्या कारण था कि गांधी जी ने अंग्रेजों की लौठ शक्ति का सामना “करो और मरो” के विदाशील निनाद से करन का प्रयास किया ? अंग्रेजों की लाठी और गोली का प्रत्युत्तर सत्याग्रह तथा अहिंसक संघर्ष से दिया ।

मानव्य सपूत भगतसिंह ने एसेम्बली में बम फेंका था भगत सिंह चाहते तो दर्शन गैलरी से भाग रहे होते किन्तु उनसे भागने से अधिक उचित पुलिस के सम्मुख प्रत्यार्पण समझा । क्या भगतसिंह अनभिज्ञ थे कि पुलिस की गिरफ्त के बाद उनके लिए प्राण दण्ड का पुरस्कार तय्योर है ? पुलिस की हथकड़ियाँ में जकड़े जाने के बाद उनका स्थान फासी का फन्ना ही होगा ? वे भली भाँति इस तथ्य से परिचित थे । फिर क्या उन्हें अपने आपकी भीत के मुँह में डबेला ? इतिहास के घटनाक्रमों का जान ताबिक दृष्टि से निरलेपित करने की आवश्यकता है ।

वास्तविक तथ्य तो यह है कि यमों के बाहदा की शक्ति से अधिक प्रभावकारि, उग्र एवं धरिष्ठ कई शक्तियाँ हैं—निर्दोष प्रेम, सहानुभूति, धैर्य, मोक्ष, क्षमा, सहनशालता, दया, वात्मल्य—तत्त्वना आदि रूपों में जाना और पहिचाना जाता है । सामने एक प्रूर व्यक्ति भरो हुई पिस्तौल लेकर आरहा है उसकी अगुना पिस्तौल के अश्व पर स्थिर है और यह गोली दागने हेतु तत्पर है किन्तु आपक मृदु वचना और उत्तम प्रभाव के कारण उसकी अगुली निना माली दागे ही अश्व पर से नीचे गिरकर सरती है । यदि

विश्व की परिभाषा

शक्तियाँ व वर्गीकरण-
नुसार समार म नितना
यस्तुआ अवथा नितन भा पदा न
का दर्शन होता है इनका विभाजन
नो वगा म फता है ।

। सामने मन पर ही बन्धुपं शक्ति हुई ही एक सागन् मञ्जीय
 छात्रक १। जीर ह्मग भमके समारोह शिन्वीना हो । यदि शनों
 यो रमन गुं पुभाइ जीर तो यो य लक्ष है वह सीरगा किगु
 का शिन्वीना है वह निरिहार गरा का ग्या रहना । एत है एक
 म मुद्र पुमाने के कारण अनुभूति हुई संवदना हुई स्वय स्वन्दन
 हुआ और चाप क रूप म अभिव्यक्ति सागुर भाइ जब कि
 निरि न मं हा मभा का अभाय है । पत्थी का विभाजित
 करण का रता सापदम्ब है । ता इन्द्र अनुभूति संवदना एवम
 मदाभा मे मुद्र दान है ये चेतन बहलत है तथा विम
 इनका मर्यथा अभय हागा है य लक्ष क रूप म परिचान जाते
 है । चेतन और लक्ष य हा संसार क समाप्त पदार्थ क प्रसर
 है । इहो दा साग मे संसार का निमित्त हुई है ।

। ता दर्शन क अनुमार्त, "सद् और चेतन इत दा इन्द्रों क
 मद्र के रूप म' संसार को परिभाषित दिया गया है । संसार
 एक सागु मे निर्या शिन्वीना लक्ष और पुत्रा इत दा इन्द्रो से
 हुआ है । लक्ष कश्चि अर्थात् पुरुष, मन्त्र भादि पराध्यायी
 लक्ष प्रपुत्र शिव जान है चरकि रगत का भागा, ताप, ज्ञान
 पुत्रा शक्ति शक्ति मे भा सादभित दिया जाता है । स्वाभाविक
 तथा विममं चेतना जागा का निदम है चहे चेतन तथा
 विममं चेतना चरकि वा विमम नहीं है उमे लक्ष कहते है ।

चेतन इन्द्र क अन्तत आत्मा मानो जाती है चिमे जीया
 शिन्वीना कहते है तथा लक्ष इन्द्र के अन्तत पुरुषान्निहाय
 धर्मानिहाय, अधर्मानिहाय, आहारास्त्रिहाय और कण्ड का

विश्व की परिभाषा

शक्तियों के वर्गीकरण-
नुसार ससार में नितनो
यस्तुओं अथवा नितने भी पदार्थों
का दर्शन होता है उनका विभाजन
दो थगा म किया जासक्ता है ।
एक व पदार्थ जिनम भावना
उत्पन्न होती है, अनुभूति होता है
सचदना होता है अथवा त्रय
स्पन्दन होता है । दूसरे वे पदार्थ
हैं जिनम न भावनाएँ हैं न अनु
भूति, न सचदना और न त्रय
स्पन्दन हा होता है ।

अनादि एवं अनन्त

ससार को परिमाप पर पहुँचने के पश्चात् कई प्रश्न उत्पन्न होते हैं—ससार का प्रारम्भ कब हुआ ? किसने किया ? प्रथम मानव कौन आया ? और इसकी स्थिति कब तक है ? क्या हमका प्रलय अथवा नारा जैसा कोई तथ्य है ? सर्वज्ञान ने अपने ज्ञान से इसे दृष्टिभूत किया और अत्यन्त सुलझा हुआ विचार मध्यादि के सम्मुख प्रस्तुत किया । जैन दर्शन इस में अपना कोई

(८)

समावेरा होता है । जब इन छ द्रव्यों की अपेक्षा से ससार का स्वरूप दर्शित किया जाता है तो उल्लेख किया जाता है कि यह द्रव्यों से ससार का निर्माण हुआ है ।



अनादि एवं अनन्त

ससार की परिभाषा पर पहुँचने के पश्चात् कई प्रश्न उत्पन्न होते हैं—ससार का प्रारम्भ कब हुआ ? किसने किया ? प्रथम मानव कौन आया ? और इसकी स्थिति कब तक है ? क्या हमका प्रलय अथवा नारा जैसा कोई सत्य है ? सर्वज्ञा ने अपने ज्ञान से इसे दृष्टिभूत किया और अत्यन्त सुलझा हुआ विचार मयन विश्व क सम्मुख प्रस्तुत किया । जैन दर्शन इस में अपना शोध

विश्वास स्थापित नहीं करता कि ससार की किसी व्यक्ति विशेष ने आरम्भ सृष्टि की ।

यदि क्षण भर के लिये किसी को मान भा ल तो कई उलझनें उत्पन्न हो जाती हैं जैसे सृष्टिकार की स्वयं को सृष्टि किसने की ? क्या वह ससार से अलग है ? यदि हा तो कहा बैठ कर उसने ससार का निमाण किया ? आदि जैन सस्कृति इस भूलभूलान्ये म नहीं फसो उसने दृष्टतापूर्वक उद्घोषित कर दिया कि ससार को अनादिचक्र प्रमाह मानने के सिवाय कोई विकल्प नहीं है । अनादि अथात् जिसकी कोई आदि नहीं हो, प्रारम्भ नहीं हो, शुरुवात नहीं हो । जिस प्रकार किसी 'वर्षा' की के पुत्र का चित्र नहीं खींचा जासकता अनादि की सीमा भी यों युगों या सदियों म निर्धारित नहीं का जासकती । अनादि शब्द स्वयं में स्पष्ट है ।

आज जो प्रश्न किये जाते हैं कि पहिले खा हुई या पुरुष ? अण्डा हुआ या मुर्गी ? बोज हुआ या वृक्ष ? इत्यादि कोई समाधान युक्त उत्तर जैन दर्शन के अतिरिक्त प्राप्त नहीं हो सकता जैन दर्शन ने जो सृष्टि के प्रारम्भिक काल को अज्ञान पर अनादि शब्द आनेगित किया है यही एक मात्र समाधान इन प्रश्नों का है । इन सभा को अनादि प्रमाहने रूप म मानना ही युक्तिसङ्गत है ।

एक और जद्दा ससार का आरम्भ जद्दा की दृष्टि से निर्णित नहीं किया जासकता है उसी प्रकार से इत्यादि अन्त भी निर्दिष्ट नहीं किया जासकता । जैसे ससार का प्रारम्भ असीम है वैसे ही

इसका अन्त भी असीम ही । समार का कभी नाश नहीं होने वाला है—प्राकृतिक परिवर्तन समय है, मुख दुःख के परिवर्तन समय हैं किन्तु इसका नाश कभी भा समय नहीं है । समार के जीवन काल को पूरी कहना जैन सरंति दो शब्दों में प्रकट करता है और वे हैं “अनादि तथा अनन्त” ।

गणित भी आज अपनी सग्याओं में अनादि तथा अनन्त की कल्पनाओं को स्वीकार करता है । गुन्य सग्याओं के क्रम में एक टम मध्य में है—सभी घनात्मक सग्याएँ गुन्य में बढ़ो होता हैं (जैसे +१, +१०, +१०० आदि) तथा सभी श्रृणामरु सग्याएँ गुन्य में छोटी होती हैं जैसे (१, १०, -१० आदि) । यदि विज्ञान से पूछा जाय कि सबसे छोटा सख्या कीनसी है ? जिसे हम आदि सख्या मानलें और सबसे बड़ा सख्या कौनसी है जदां इन गणित सग्याओं का अन्त मानलें ता यह कोई उत्तर नहीं देसकता केवल श्रृण अन्त (Minus infinity) व घन अनन्त (plus infinity) के चिह्न बनाने से अधिक कुछ नहीं कर सकता । ये श्रृण अनन्त और घा अन्त के चिह्न ही समार के लिये जैन दर्शन के दो शब्द अनादि और अनन्त हैं ।



कालचक्रों का व्यवहार

अनादि काल से ससार का अस्तित्व है। जैन सस्कृति इस काल पर क्रमिक परिवर्तनों के सूक्ष्मदर्शी यत्र से दृष्टिपात करती है। उसके अनुसार व्यक्ति की मृत्यु, समृद्धि, वैभव, आयु क्रमशः काल व्यतीत होनेपर घटती अथवा बढ़ती है। काल दो चक्रों के मध्य घूमता है जिन्हें कालचक्र कहते हैं। अनादि काल से जिस प्रकार दिवस के बाद रात्रि और रात्रि के उपरांत दिवस होते आ

रहे हैं उमी प्रकार कालचक्र का एक भाग दूसरे के बाद प्रभाव शालि होता रहता है ।

इन दो भागों को उत्सर्पिणी एवं अवसर्पिणी काल के रूप में सम्बोधित किया गया है । एक उत्सर्पिणी काल तथा एक अवसर्पिणी काल के व्यक्तित हो जाने पर एक कालचक्र सम्पूर्ण हो जाता है तथा नया कालचक्र गतिमान होता है ।

उत्सर्पिणी काल उसे कहते हैं निम्नमें व्यक्ति की समृद्धि, आयु, शरीर, सुख, सम्पन्नता, धैर्य, धर्मश, वृद्धिगत हानि चरमोत्कृष्ट पर पहुँचते हैं । अवसर्पिणीकाल उसे कहा गया है जिसमें इन सब का हास होता है और ये नष्ट होकर व्यक्ति को निरुत्थ स्थिति में उतार देते हैं । उत्सर्पिणीकाल का चरमोत्कर्ष आना है तो किसी भी वस्तु की कमी नहीं होती—व्यक्ति को न इच्छा होती है और न लालसा ही । वह सुखी होता है—परम सुखा होता है तथा समुद्र में सुई की नोक के धरानर भी दुःख का उसे दर्शन नहीं होता । दूसरे पक्ष में जब अवसर्पिणी काल चलता है तो मनुष्य की इच्छा, लालसा, स्वार्थपरता बढ़ती जाती है वह लडता झगड़ता है, फूट क्लेश मचता है, एक दूसरे के प्रति सशक होता है और जब इस काल की पराशा आती है तो उसका शरीर एक दम लघुनाय हो जाता है—संसार में सुख नाम का कोई तथ्य ही शेष नहीं रहता केवल दुःख और दुःख ही दुःख दिव्यादितैता है । समुद्र में सुई की नोक के समान भी सुख दर्शित नहीं होता ।

उत्सर्पिणी तथा अवसर्पिणी दोनों को छ छ भागों में विभक्त किया गया है जिस प्रकार वर्ष के १२ भागों में प्रत्येक को महिना कहते हैं उसी प्रकार इन दोनों कालों के प्रत्येक भाग का नाम "आरा" है। दोनों काल में ६-६ आरे होते हैं—इन आरों के नाम इनके गुणों के अनुरूप जैन इतिहास में इस प्रकार सन्दर्भित किये गये हैं -

- | | |
|------------------|-------------------|
| (१) सुखमा सुखमा | (४) दुःखमा सुखमा |
| (२) सुखमा | (५) दुःखमा |
| (३) सुखमा दुःखमा | (६) दुःखमा दुःखमा |

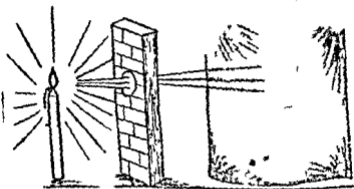
जब इन आरों का क्रम उपरोक्तानुसार गतिशील रहता है तब चरम सुख की परिणति से पराजय चरम दुःखमा परिवर्तन होता है तो यह काल अवसर्पिणी काल कहलाता है। विपरीत इसके यदि आरा का क्रम उल्टा हो या दुःख की परिणति से चरमोत्कर्ष पर सुख का साम्राज्य हो तो उसे उत्सर्पिणी काल के नाम से सन्दर्भित किया जाता है। जितना क्रम निम्नानुसार है -

- | | |
|-------------------|------------------|
| (१) दुःखमा दुःखमा | (४) सुखमा दुःखमा |
| (२) दुःखमा | (५) सुखमा |
| (३) दुःखमा सुखमा | (६) सुखमा सुखमा |

इन आरों में सुख दुःख का क्रम किस प्रकार प्रभावशील है इसे निम्न प्रयोग द्वारा समझा जा सकता है।

माना कि समतल धरातल पर एक प्रशाशपुञ्ज ज्वलित किया जाय एवं एक पर्दे पर उसके प्रशाश की तीव्रता का अबलो

ष्ट किया जाय । दोनों के मध्य एक स्थिर रख दा जाय जिसके
 छिद्र की लम्बाई ५ से० मी० हो । अब प्रकाश को फिरसे पाच
 से० मा० लम्बे माग से प्रविष्ट होकर पदों पर प्रमाहित होंगी ।
 यह अवस्था प्रकाश की पूजता की होगी जिसमें अधिकतम प्रकाश
 पदों पर आगहा है । प्रभासित भाग पर अक्षर नाम मात्र का भी
 नहीं हागा । अब माना कि छिद्र का लम्बाई घटा कर ४ से०मा०
 करदी जाय इस अवस्था में प्रकाश की चमक म अन्तर पड़ेगा
 किन्तु अक्षर का कोई स्पष्ट दर्शन नहीं होगा । प्रकाश कम
 सौम्यता वाग दर्शित होगा । घाटे से छिद्र की लम्बाई ३ से०मी०
 करदा जाय इस अवस्था में प्रकाश की मात्रा और कम होगी
 किन्तु सूक्ष्म रूप में अक्षर भी अपना प्रभाव प्रदर्शित करता
 प्रारंभ करेगा । छिद्रको लम्बाई और घटाई जाय ० से०मी०करदी
 प्रकाश की उपोत्पन्ना म ह्वाम होगा और वाटिमा म अभिवृद्धि
 दोनों समान मात्रा में रहेंगे किन्तु प्रमुख अक्षर का अधिप
 द्रष्टिभूत होगा और आगे बढ़े छिद्र को घेयल १ से० मा० कर
 दिया इस अवस्था में अक्षर एकदम घट जायगा और प्रकाश
 एकदम घट जायगा । पदों पर अक्षर अधिक और प्रकाश कम
 मात्रा में होगा । अतः छिद्र एकदम घट कर दिया जाय । प्रकाश
 पूरा नष्ट होजायगा केवल अक्षर हा शेष रहगा । टीप इसी
 प्रकार यदि सुव्य को प्रकाश और दुःख को अक्षर माने तों
 पहिले आर "सुखमा सुखमा" म सुख और परम सुख होता है,
 दूसर आर म सुखकी मात्रा घटती है लेकिन दुःख दियाई नहीं
 देता तामरे आर म दुःख दर्शन देता प्रारंभ कर दता है, चौथे
 ओर म दुःख सुख पर प्रमुख जमालेता है, पाचवे में दुःख को



दुःख धक्के देना प्रारंभ कर देता है और छठे में पूर्ण अधकार की तरह सुख समाप्त हो कर दुःख ही दुःख छाता है। यह अवसर्पिणी का क्रम है।

यदि विपरित अथ स्टिड् के छिद्र को अनावृत करना प्रारंभ करें तो अधकार से प्रकाश की ओर वृद्धि होती है। उत्सर्पिणी काल में सुख की वृद्धि होती है एवं चरमोत्कर्ष कर चरम सुख की परिणति ससार में व्याप्त रहता है।

अनादिकाल से ससार इन्हीं कालचक्रों में व्यवहृत है। वर्तमान में अवसर्पिणी काल का ५ वा आरा दुःखमा प्रभावशाल है।

जिन, जैन एवं जैन धर्म

गुत्सर्पिणी तथा भवसर्पिणी
दोनों कालों में जैन मान्यता के अनुसार २४ २४ तीर्थंकरों का आविर्भाव होता है। ये तीर्थंकर ही अपने उपदेशों द्वारा मानव संस्कृति का परिमार्जन करते हैं। हिंसा, धारण्य अथवा अधर्म के रूप में जिस वातावरण का जनमानस में कथित पिथर्मी निर्माण कर देते हैं उसका उच्छेदन करने के लिये तीर्थंकर वैश्वदेव की प्राप्ति के पश्चात् अन्य शक्त

प्ररूपणा करते हैं। तीर्थंकर योगी होते हैं वे सदैव आन्मलीन होकर स्वयं पर कल्याण की भावना से मानव समाज को सही दिशा की ओर प्रवृत्त करते हैं। तीर्थंकरा द्वारा प्रतिपादित विचार धारा उस समय धर्म का मूलाधार बनता है एवं यही जैन धर्म के रूप में विश्व रगमच पर प्रस्तुत होती है। जैन धर्म 'जिन' शब्द से उद्गमित हुआ है जिसका अर्थ होता है जातने यात्रा। अपनी इन्द्रियों से संघर्ष कर उनको नियंत्रित करने वाली प्रभृति को 'जिन' कहते हैं। 'जिन' द्वारा परिभाषित धर्म जैन धर्म के रूप में प्रचारित होता है। 'जिन' की पूजा, उपासना तथा भावना रखने वाले 'जैन' माने जाते हैं। जिन, जैन और जैनधर्म तीन शब्द उपास्य, उपासक और उपासना की ओर संकेत करते हैं। जैनों के उपास्य जिन होते हैं और वे जैन धर्म की उपासना करते हैं। जैन जन्म से नहीं आचार से माने गये हैं। जैन धर्म जातिवाद को नहीं मानता धर्मवाद में अपनी आस्था व्यक्त करत है।

इतिहास के इस वास्तविक तथ्य के अनुसार जैन धर्म का उत्पन्न होना प्रतिपादन एवं विस्तार होता आया है। जयसेना चक्रा की परम्परा है, तत्र से (अनादिकाल से) जैन धर्म का अस्तित्व है। जैन धर्म की स्थापना न तो किसी व्यक्ति विशेष द्वारा हुई है और न किसी सरसवत को इसरी स्थापना के माध्यम से स्थापित किया जा सका है। भारत के भूतपूर्व राष्ट्रपति, दशम पाय डॉ० राधाकृष्णन् ने मान्य किया है कि "जैन धर्म अगणित समय एवं युगानुयुग में चला आ रहा है।" इनके अतिरिक्त डॉ०

जान्स हर्टेल, डॉ हर्मन यारोपो आदि विद्वानों ने भी इनके अनादि परम्परा से मानने में कोई आपत्ति नहीं की है। सनातन घमाबलम्विया के पवित्र ग्रन्थों में भी प्रायः जल से यह सिद्ध होगया है कि जैन धर्म अति प्राचीन धर्मों में से एक है। मोहन जोदधो एवं हरप्पा में प्राप्त अवशेषों में इस सत्य को और अधिक पुष्ट कर दिया है।

जैन धर्म चेतन शक्ति के शुद्धिकरण के सत्य को आमरचित कर विरसित हुआ है। उसके आराम विचार एवं व्यवहार आत्म विकास की मूल भित्ति पर ही निर्मित हैं।

जैन धर्म की दिव्य शक्ति में यदि विश्वास द्रव्य ने महत्व प्राप्त किया है वा यह केवल चेतन ही है।



आत्मा :

एक अवलोकन

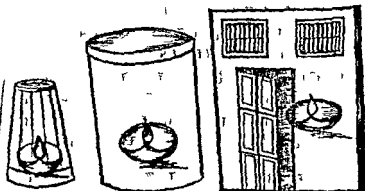
‘चेतनो लक्षण जीव’
चेतना जिसका लक्षण हो
उसे जीव या आत्मा कहते हैं। आत्मा
चेतन होती है। जिसमें आत्मा
का निवास होता है वह चेतन
है। आत्मा का निर्गमन होन पर
चेतना शेष नहीं रहती। आत्मा
अदृश्य एवं अरूपी है अदृश्य
इस अपेक्षा से कि यह चर्मचक्षुओं
द्वारा दृश्य नहीं होती। सयज्ञ
अपने ज्ञान चक्षुआ से आत्मा का
गत्याद पर समते हैं।

आत्मा का कोई रूप रस गंध ध्वंश्या स्पर्श नहीं है—अतएव उसे अरूपो सन्दर्भित किया गया है। आत्मा का निवास गृह शरीर है तथा यह शरीर में व्याप्त रहती है। आत्मा के असंख्य प्रदेश होते हैं—य आत्म प्रदेश एक दूसरे से गृह खलित हान हैं। शरीर के जिस जिस भाग में अनुभूति या संवेदना होती है— उस उस भाग में आत्म प्रदेश उपस्थित होते हैं। नाक, आंख, मुँह, रीढ़, हृदय, मस्तिष्क आदि के शरीर में निर्धारित स्थान होते हैं लेकिन आत्मा के लिये कोई केन्द्र निश्चित नहीं होता यह शरीर के प्रत्येक भाग में व्याप्त है। आत्म प्रदेशों की उपस्थिति का परोक्षण अनुभूति की कसौटी पर किया जा सकता है। जहाँ जहाँ अनुभूति नहीं होती वह जड़ है जैसे कि घाल, नामुन, दात आदि के अम भाग। ये जड़ हैं व इनमें आत्मा का निवास नहीं है। जैसा शरीर का आयतन होता है आत्म प्रदेश उसी आयतन में समा जाते हैं।

आत्मा में स्थिति स्थापना का गुण माना जा सकता है। जिस प्रकार खरों को चींचते हैं तो उसमें दवाय की मात्रा के अनुसार चींचा होता है उसी प्रकार आत्म प्रदेश आयतन के अनुसार विस्तृत हो जाते हैं अतएव यही है कि खर निश्चित सीमा तक ही उन्माया जा सकता है बाद में टूट जाता है किंतु आत्मा के लिये ऐसी कोई सीमा नहीं है वह अखण्ड ही रहती है उसके कोई भाग प्रभाग सभ्य नहीं हैं।

एक दापन हो और उसे पीतल की गिलास में धन्द करे

तो उसका प्रकाश गिलास का दावालों तक व्याप्त होता है, गिलास को परिवर्तित कर, ड्रम में रखें, तो प्रकाश के, वे ही परमाणु ड्रम की दावालों- तक व्याप्त हो, जाते हैं और ड्रम के स्थान पर दीपके के प्रकाश का कमरे में अन्वेषकन किया जाय तो वे ही परमाणु अपना आयतन कमरे की दीवालों तक व्याप्त बना लेते हैं । दीपक के प्रकाश की तरह ही आत्म प्रदेश शरीर के अनुसार अपने अस्तित्व का विस्तार कर लेते हैं ।

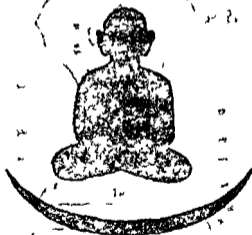


अतएव जब फोड़ जोध चींटी के शरीर में होना है तो उसके आत्मप्रदेश चींटी के शरीर तक व्याप्त होते हैं और उमे जब हाथी के शरीर में जानें हैं तो हाथी के शरीर में उसके अनुसार व्याप्त बन जाते हैं । आत्मप्रदेशों में न तो वृद्धि होती है और न उनका ह्रास ही होता है । अहम प्रदेश अमोम होते हैं ।

आमा अक्षय ग्य अधिनारी होती है । अक्षय से सात्यर्य है आमा अनर-अमर तथा अनिधन है-यह साध्यत है उसका कभी

सक्य नहीं होता। 'बड़े संसार में हो या भोक्ष में अपनी स्थिति घनले समा भी उसी परिमंभादि नहीं होती। दूसरा उमें किमो भी क्रिया प्रक्रिया द्वारा भष्ट नहीं किया जासकता। फागने पानी में रखने पर गलना है, सड़ता है और भाग में सम्पर्क होने पर जलना है किंतु आमा अविनाशी है उम पर सड़ने, गलने, जलने या विनष्ट होने की कोई क्रिया अफल नहीं होता। उद्भूत धम की साक्षर भा आत्मा का साक्षात् नर सकती।

आमा का स्वयं का गृह सिद्ध शिला है लेकिन जिस प्रकार भटवने याडा व्यक्ति विभिन्न धमशाडाओं में अपना अरगाहन

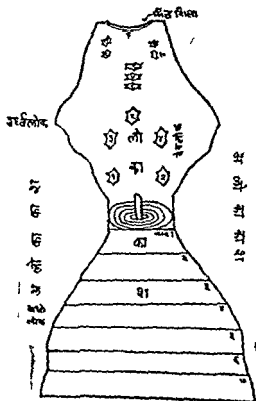


सिद्ध शिला

करता है उसी प्रकार अपने संसार भ्रमण की अवस्था में आत्मा को विभिन्न शरीरों में स्थान दुबना पडता है। हम मपडा पहिनते

(२४)

हैं जब उसके फट जाने पर दूसरा बदल लेते हैं आत्मा भी शरीर में प्रविष्ट होती है तथा आयुष्य समाप्त होने पर इसे छोड़ दूसरा शरीर धारण कर लेती है । आत्मा को परिभ्रमण का पङ्कत है-८४ लक्ष जीवायोनियों में यह शरीर बदलने



कार्य करते हैं तथा १४ रातलोंमें में यह घूमता है।
आत्मा को इसी अपेक्षा से परिभ्रमणशील के रूप में आलेखित
किया गया है। आत्मा के गमन का क्षेत्र मसार का लोकाराश है
निमम यह विभिन्न भयों में भटकता है व पूण शुद्धिकरण हो
जाने पर ससार से ऊपर उठकर लोकाकाश के अमभाग पर स्थित
मिद्धागिला पर अपने आपका स्थापित कर लेता है जहाँ से पुनः
उसे ससार में नहीं आना पड़ता। अनन्त अत्याकाश में धर्मो-
स्तिनाय एव अधमास्तिनाय द्रव्यों के न होने के कारण शून्य
कमा उमम नहीं जाता। आत्मा के गमनागमन की सामान्य
कारण सर हा सामोत है। (देखिये पृष्ठ १४ का चित्र)

आत्मा अगणित हैं। प्रत्येक की आत्मा
एक दूसरे में किसी का कोई हानिभेद नहीं है।
इसमें कोई विश्वास नहीं कि समग्र ससार में एक ही
है एव सभा में उसका अंश अथवा प्रतिबिम्ब
दरान के अनुसार प्रत्येक की आत्मा भिन्न है।
परान पर प्रत्येक घायल अलग अलग मो
जाता है उसी प्रकार ससार का
प्रत्येक की आत्मा अलग अलग है।
एव आत्मा है एव नितन भा प्राणा
आत्मा का निवास है।

जैन दर्शन ज्ञान की आत्मा
अनन्त ज्ञान आत्मा की स्वाभाविक
न तो यह आत्मा में राह में

ये कभी विस्थापित होता है। ग्रहों में जिस प्रकार पीलापन हर स्थिति में सम्बन्धित होता है आत्मा में ज्ञान का गुण सदैव सलग्न होता है।

आत्मा अनादि है। उसके जन्म की भी कोई तिथि निश्चित नहीं की जा सकती। सत्कार के अनादि चक्र में आत्मा भी अनादि काल से अपना अस्तित्व रंगे हुए है। जन्म और मृत्यु जैसे कोई नो बिन्दु धामा के साथ संयुक्त नहीं किये जा सकते। वह स्वयं निरामार है एवं अनादिमाल से सत्कार में भटकरही है।



आत्मा का अस्तित्व

आधुनिक विज्ञान आत्मा के अस्तित्व के प्रति सशक है। जो वस्तु प्रयोगशाला में सिद्ध नहीं की जा सके उसे वैज्ञानिकों के आधार पर मान्य करने हेतु वैज्ञानिक कदापि तय्यार नहीं हैं। आत्मा वैज्ञानिकों के लिये कल्पित कल्पना बन गई है। यही कारण है कि आधुनिकतम विचारधारा में आत्मा पर आत्मा के शुद्धिकरण की नींव पर विरामित धर्म पुराने तथा दार्शनिकी विचा

माने जाने लगे हैं । नास्तिकवादियों ने शरीर व आत्मा को एक मात्र कर विज्ञान निघटाने का प्रयोग किया है यहा तक कुछ समझौतावादा पश्चात्य दशककारा ने आत्मा को भी का मोखियों मणकार कर दिया है । भारत के अगभग सभी प्रमुख दर्शन विज्ञाने न किसी रूप म आत्मा को ग्याकार करते हैं जो केवल निमाग फीगुर नर्ने है-वास्तविकता है । जैसा कि अनेक किया जा चुका है आत्मा कम चतुमा का विषय नहीं है फिर धाद कितने ही सूक्ष्म से सूक्ष्म दर्शा यत्र भा लगा दिये जाय वैज्ञानिक अपन फोटोग्राफ की गिरकत म यभी आत्मा को फेमा नहीं करते । आत्मा को मान्यता केवल अनुभूति से ही मिद्व की जा सकती है । शरर म मिठास होती है किंतु मिठास को देखा नहीं जा सकता, मिठास का परङ्क कर हथेली पर प्रदर्शित नहीं किया जा सकता जोभ ही उसका परागम स्थल है । ठाक इसी प्रकार आत्मा इन्द्रिया के द्वारा अनुभूत का जा सकता है सको द्वारा उसकी सिद्धि प्रकट हो सकती है उमफ अगित्य का परीक्षण साधना का प्रयोगशाला में किया जा सकता है ।

हमारे प्रथमर केवल आत्मा शब्द को व्यापित कर ही मौन नहीं बैठ गय है अनन आत्मा क पक्ष म अकाश्र ग्य अटल प्रमाण प्रस्तुत किये हैं । दिव्य सयशों ने केवलज्ञान के सूक्ष्मदर्शीयत्र से आत्मा का दर्शन किया है त्य विश्व के सम्मुख उससे स्वरूप को प्ररूपित किया है । जो सत्य है वस्तुगियति है वही सवशा द्वारा प्रकटित है ।

जब भगवान महागीर के समयसरण की रचना हुइ तब

इन्द्रभूति भी वाक्-सुद्ध करने के लिये उनके समझ गया। यज्ञ चौर विभु ने आत्मा के सम्बन्ध में इन्द्रभूति के सदेहों को जिस प्रभावशाली, परिष्कृत एवं प्रानालित शैली से दूर किया उसका वर्णन ग्रन्थों में प्राप्त है। उनके उपरांत गणधर भगवतों, प्रसर आचार्यों प्रमाण्ड विद्वानों ने विचार समुद्र का मथन कर आत्मा को सिद्ध किया जो जैन दर्शन का अमूल्य धराहर है। इन सभी को ममन्वित कर आत्मा की सिद्धि के कुछ तर्क यज्ञ प्रस्तुत किये जा रहे हैं -

(१) यदि आत्मा जैसा कोई द्रव्य नहीं है तो फिर शरीर में चेतना का दर्शन क्या नहीं होता, वह कार्य क्यों नहीं करता, उसमें बुद्धि व प्रज्ञा शक्ति कुण्ठित क्या होती है? उसके अन्दर विवेक शुन्यता का प्रभाव क्या हो जाता है? स्पष्ट है कि चेतना जिसका लक्षण है वह आत्मा शरीर को त्याग गई है। यदि चेतना शरीर का लक्षण होती तो शरीर में भी शरीर के अंग प्रत्यग विद्यमान रहते हैं उसे कार्यशील रहना चाहिये। जगत् नि वास्तविकता अन्य ही है।

(२) अमावस्या का घना अंधकार, गियानान जगत् में अंधेरा गुफा गुफा में किसी व्यक्ति को खड़ा कर दिया जाय एवं उसने शरीर को कालिमा से पोत दिया जाय। स्वयं का शरीर नहीं दिखाई देता है फिर भी बाहर से आभास देता है कि भीतर कौन है? तो वह तुरन्त उत्तर देता है "मैं" हूँ। यह मैं कौन है? क्या शरीर? लेकिन यह तो दिखाई ही नहीं देता- मानना होगा कि 'मैं' की अनुभूति आत्मा का ही है।

(३) इंद्रिया शरीर में हैं और कभी उनमें विबाध उत्पन्न हो जाता है, जैसे आम खय करने के लिये घाजार गये-आर ने हरा रंग देखा कर कहा 'आम खट्टे है,' नाक ने सूघ कर सिफारिश की कि 'उतने खट्टे नहीं जितना नेत्र कह रहे हैं,' जीभ से स्वाद लिया, जाभ ने कहा 'शकर की तरह मृदुता-का इनमें निवास है।' तान इंद्रियों ने तान विसषादा विवरण प्रस्तुत किये इन विमवादी विवरणों पर अन्तिम याय कर कय का निर्णय कौन कर सक्ता है ? आत्मा के अतिरिक्त विकल्प ही नहीं ।

(४) घब्र, फल, फूलादि जिस प्रकार भोग्य वस्तु हैं- शरीर भी भोग्य वस्तु है । वह गदा होता तो पसद नहीं आता, उसे स्वच्छ बनाया जाता है, अच्छे बखों से सुरोभित किया जाता है पर जलशरो से जलटूट किया जाता है । यह सब भोग कौन करता है- शरीर स्वय- कभी नहीं, भोग्य वस्तु का भागी दूसरा होता है- शरीर से दूसरी आत्मा है ।

(५) किसी भी इंद्रिय के अपनी शक्ति खोने के बाद भी हमरा अनुभूतिया सक्ति-र म समहित रहती हैं यह समझघा कौन है ? आत्मा ही ।

(६) किसी वस्तु का निषेध सभी किया जाता है जयकि वह स्वय विग्नमान होती है । श्रीमान् क मरान म नर्न हैं यह कहने का सीधा तात्पर्य यहा है कि "श्रीमान् क" नाम के कोई व्यक्ति । तिनका मरान में होने से निषेध किया गया है । यह टवल । कुर्मी नहीं इसका अय है कि कुर्मी जैसा कोई वस्तु अवश्य है

ठीक इसी प्रकार जब अनामजादी यह पत्ते हैं कि अहम् नहीं है या आमा शरीर में नहीं माना जायगी तो तुरन्त यह तिष्ठि हो जाती है कि आत्मा जैसा कोई द्रव्य अवश्य है जिसका निराकरण किया जा रहा है ।

(७) शरीर व इंद्रियों आदि की प्रवृत्तियों पर नियंत्रण क रूप में कार्य करने वाला जिसे मान्य करें ? जैसे पृथ्वी में गैस बढ़ गई है वह बाहर जाना चाहता है किन्तु यदि रिमा ममा के मध्य में बैठ हुए हा तो वीन उसने बाह्य आगमन को रोकने है ? आत्मा ही । क्रोध आता है और मन कहता है कि गुण देने वाले को तमाचा तमाचा से ठीक कर दें किन्तु साम् बलिष्ठ शरार देकर आने पर नियंत्रण कौन करता है ? आत्मा ही ।

(८) मानसिक तरंगा में परिवर्तन करने वाला, कौन है सामने मिष्टान्त की थाली है—जाभ के स्वाद से आनन्द का म स्तिक लहरें प्रसारित हो रही हैं किन्तु तभी प्रप्रवाहक ने आनन्द 'निकटतम सम्बन्ध की मृत्यु की सूचना दी । मानसिक तरंगों 'परिवर्तन होगया—इस परिवर्तन के लिये निम्नकार कौन ? मुझ 'और तुरन्त दुःख की अनुभूति किसने का ? कला ने हा ।

(९) वर्तमान में कई ऐसे उदाहरण मिलते हैं कि निरवम 'की स्मृतियों का व्यक्तिया को स्मरण हुआ । जैसे 'मम म जातिस्मरण ज्ञान के असरय उदाहरण है । 'इस मम 'का स्मृति या जाति स्मरण ज्ञान 'स्मृति व 'स्मरण

इस भव को शृंगलित करने वाला कोई माध्यम अनिरोध है । यह माध्यम शरीर नहीं हो सकता क्या कि शरीर तो यहीं रह जाना है एवं चित्त पर श्रलित होकर राग में परिवर्तित हो जाता है । इस माध्यम के रूप में आत्मा ही अस्तित्वमान की जा सकती है ।

(१०) अन्तिम प्रिय व्यक्ति अपना सस्थान किसी मार्ग पर स्थापित करता है प्रादका की मन्दता होने पर मार्ग एवं पशोसियों को त्याग कर नये स्थान पर सस्थान को संचारित करता है । मुद्रा (धन) अधिक प्रिय इसलिये मार्ग बदल दिया । पुत्र का शौर्यकाल व्यतीत हुआ तो मुद्राआके विनिमय द्वारा उसे शिक्षित किया । पुत्र मुद्राओं से अधिक प्रिय माना गया । पुत्र गृहस्थाश्रम में प्रविष्ट हुआ पत्नि और पुत्रवधू में विवाद हुआ । पुत्र का अलग किया-पत्नि से अधिक प्रेम होने के कारण । तो पति सब से प्रिय हुई किन्तु मजान को अग्नि ने आ घेरा पत्नि सातवाँ मजिल पर है और स्वयं पहला पर । क्या करता है सङ्ग पर आकर पत्नि को पुकारेगा (कुछ अपवादों को छोड़ कर) वह स्वयं कभी अग्नि की लपटा से सघर्ष नहीं करेगा । पत्नि से अधिक अनुराग ही इसका कारण है ।

प्रिय पैसा, पैसे से अधिक पुत्र, पुत्र

अधिक स्वयं का शरार प्रिय,

शरार हुई किन्तु क्लेष एवं

शरीर को भा छोड़ देता है

ता उसके सुख के लिये वह

और वह क्या हो सकती है ? केवल आत्मा ही ।

पचासों इस प्रकार के तर्कों को गूथा जा सकता है ।
उपरोक्त तर्कों से हम इस निर्णय पर निस्संदेह आना प
कि आत्मा को मानना कोई अंधविश्वास नहीं है ।

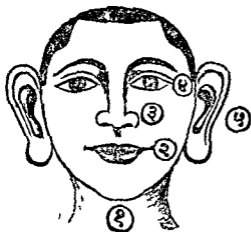


आत्मा के भेद-प्रभेद

आत्माओं को उनकी अवस्था के अनुरूप भिन्न भिन्न वर्गों में वर्गीकृत किया जाता है लेकिन मूलतः आत्माएँ दो प्रकार की मानी गई हैं एक वे जो ससार में परिभ्रमण करती हैं और दूसरी वे जो सासारिक बंधनों से मुक्त होकर शुद्ध-चुद्ध एक मुक्त अवस्था में सिद्धशिला पर स्थापित हो गई हैं। ससार में गमन करने वाली आत्माएँ 'ससारी' तथा ससार से मुक्त आत्माएँ 'मुक्त' रूप में सम्बो-

धित की जाती हैं। इस प्रकार आत्मा के दो प्रकारों का प्रकाशन हुआ एक ससारी तथा दूसरी मुक्त ।

ससारा आत्माओं को पुन दो वर्गों में विभक्त किया गया स्थावर एवं प्रस । जो स्थिर रहते हैं, प्रविवृल असरों म भी एक स्थान से दूसरे स्थान पर नहीं जासकता हैं वे स्थावर कहलाता हैं जैसे वनस्पति में उपस्थित जीव । विपरीत जो हलन चलन करती हैं वे प्रस की परिधि में मान्य की गई हैं । दूसरे शब्दों म इहे परिभाषित करें तो चिन आत्माओं का प्रास ज्यक्त होता है वे स्थावर कहलाती हैं तथा चिनरा प्रास व्यक्त हाता है वे प्रस माती गई हैं । स्थानर के अन्नगत सभी एकेन्द्रिय जाव आते हैं जवाक प्रस में द्विन्द्रिय, त्रिन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय तथा पञ्चेन्द्रिय का समावश किया गया है ।



पाच इन्द्रिया

- १ श्रवण
- २ रसना
- ३ घ्राण
- ४ चक्षु
- ५ श्वात्र

एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय, त्रिन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय तथा पञ्चन्द्रिय ये नामकरण इन्द्रिया की अपेक्षा से हैं। इन्द्रिया ५ प्रकार को हैं जिनका क्रम इस प्रकार निर्धारित किया गया है स्पर्श (त्वचा), रसना (जाम) घ्राण (नास), चक्षु (नेत्र), श्रोत्र (कान)। जो एकेन्द्रिय जीव होते हैं उनके केवल एक इन्द्रिय होता है मात्र स्पर्श। जो द्वीन्द्रिय होते हैं उनके दो इन्द्रिया होता है स्पर्श एवं रसना। इस प्रकार त्रिन्द्रिय के तीन इन्द्रिया-स्पर्श, रसना, घ्राण-चतुरिन्द्रिय के चार स्पर्श, रसना, घ्राण, चक्षु एवं पञ्चन्द्रिय के पांच इन्द्रिया स्पर्श, रसना, घ्राण, चक्षु और श्रोत्र होता है।

स्थानर के एक इन्द्रिय (एकेन्द्रिय-केवल त्वचा) होती है। एकेन्द्रिय जान पांच प्रकार के शरीरों में निवास करते हैं पृथ्वीमाय, अप्माय (पानीमाय), तेजस्माय (अग्निमाय), वायुमाय (वायुमाय) वनस्पतिमाय (शाक, वृक्षादि)। पृथ्वी, पानी, अग्नि, वायु और वनस्पति ये सभी शरीर हैं तथा इनमें आत्मा का निवास होता है।

वनस्पतिमाय का प्रकार के उल्लेखित किये गये हैं एक वे जिनके एक शरीर में केवल एक आत्मा का निवास होता है और दूसरे वे जिनके एक शरीर में एक से अधिक (अनन्ततर) आत्माओं को जन्मग्रहण प्राप्त होता है। पहला श्रेणी के जीवा को प्रत्यक्ष वनस्पतिमाय तथा दूसरी श्रेणी के जावों को साधारण वनस्पतिमाय नाम दिये गये हैं। प्रत्यक्ष वनस्पतिमाय में गेहूँ, चना आदि का समावेश होता है जिनके साधारण में सभी जमानों में आलू, रताड़ु, मूला, शकरजन्द आदि आते हैं। गेहूँ के बीज का तथा आलू का पराक्षण कर तो प्रत्येक तथा साधारण दोनों श्रेणियों के साक्षान्त

उदाहरण मे हम अग्रगत हो सकते हैं । गेहू के बीज को बोने पर वह पुन अत्रुरित हो उठता है किंतु उसके दो टुकड़े करने के बाद यदि उसे याया जाय ना पुनार्कृष्ण को यात समय नहीं है । स्पष्ट है कि जब गेहू पर अपमान किया गया तो आत्मा चला गई एव नष्ट शर शरार गेय रह गया निममें पुनर्जनन की शक्ति नहीं रहा याने एक शरार म एक आत्मा थी जो शरीर के टुकड़े करने पर निर्गमित होगई यदि एक से अधिक आत्माण होती तो गेहू के सण्डित भागा म अग्रय उनरा अन्तिर रहता जिदें बोने से अत्रुरण अवयम्भायी था । दूसरी ओर हम आलू को भागा में विभक्त करें और बोय तो प्भवते हैं कि आलू के प्रयेर भाग म अकृष्ण होगया है कारण यदा है कि हर भाग म सण्डित निस्वण्ड होने के उपरात मा भिन्न मिन्न आत्माण विद्यमान हैं । जतएव आलू आदि अनन्तराय याने एक शरार म अनन्त आत्मा आ से युक्त मान जाते हैं ।

शय द्वीन्द्रिय से लेकर पञ्चाद्रिय तक के जीव ग्रस मे आते हैं द्वीन्द्रिय में घोंडा, शय, नास, केंचुण, प्रमि लट आदि त्रैन्द्रिय म चोंगी, सटमल, थाचइ, मकाइ, लायजू आदि चतुरिन्द्रिय में भौरे, मच्छण, मन्मी, मिश्रा मिश्रु आदि हाते हैं ।

स्थानर जाना को दा अन्य रूपा म भी व्यक्त किया गया है सूत्र मय वादर । मूत्र यान व स्थानर जाय जो लोराकाश में व्याप्त रहते हैं किन्तु चम चतुओं द्वारा दृष्टिभूत नहीं किये जा सकते-वादर चम चतुआ द्वारा तेल नासकते हैं ।

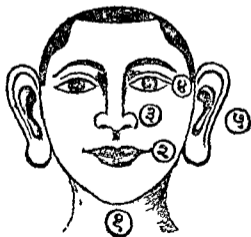
पञ्चिन्द्रिय आत्माण चार कक्षाआ में विवेन्द्रित की गई हैं मनुष्य, नरक, तिर्यच और देव ।

आत्मा के भेद-प्रभेद

आत्माओं को उनकी अवस्था के अनुरूप भिन्न भिन्न वर्गों में वर्गीकृत किया जाता है। लेजिन मूलतः आत्माएँ दो प्रकार की मानी गई हैं एक वे जो ससार में परिभ्रमण करती हैं और दूसरी वे जो सासारिक बंधनों से मुक्त होकर शुद्ध-बुद्ध एवं मुक्त अवस्था में सिद्धशिला पर स्थापित होगई हैं। ससार में गमन करने वाली आत्माएँ 'ससारी' तथा ससार से मुक्त आत्माएँ 'मुक्त' रूप में सम्बो-

धित की जाती हैं। इस प्रकार आत्मा के दो प्रकारों का प्रकाशन हुआ एक ससारी तथा दूसरी मुक्त।

ससारी आत्माओं को पुन दो वर्गों में विभक्त किया गया स्थावर एवं प्रम। जो स्थिर रहता है, प्रतिकूल अवसरों में भा एर स्थान से दूसरे स्थान पर नहीं जा सकता है वे स्थावर कहलाता है जैसे वनस्पति में उपस्थित जीव। विपरीत जो फलन चलन करता है वे प्रम की परिधि में मान्य की गई हैं। दूसरे शब्दा में इन्हें परिभाषित करें तो निम्न आत्माओं का प्रस अयुक्त होता है वे स्थावर कहलाती हैं तथा निम्नका पास व्यक्त होता है वे प्रम मानी गई हैं। स्थावर के अन्तर्गत सभी एकेन्द्रिय जात्र आते हैं जवात्र प्रम में द्विन्द्रिय, त्रिन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय तथा पञ्चेन्द्रिय का समावेश किया गया है।



पाच इंद्रिया

- १ दृश
- २ श्रवण
- ३ घ्राण
- ४ चक्षु
- ५ श्वात्र

जीव की पर्याप्ति

आत्मा परिभ्रमणशील है उसे एक भव में दूसरे भव तथा एक गति से दूसरी गति में घूमना पड़ता है, यानिगा मज्जम लेना पड़ता है। मृत्यु हुई तो नाश करके शरीर का होता है आत्मा को तो एक मरान त्याग कर दूसरे में शरणागत होना ही पड़ता है। जब आयुष्य समाप्त हो जाता है तो आत्मा दूसरे भव में जाकर अपना शक्ति का संप्रद करती है। सर्व प्रथम यह आहार के पुद्गल भावन रूप में गृह्य करती है। आत्मा के साथ तैजस् शरीर को भा एक भव में दूसरे भव में जाने का पात्र प्राप्त है इस तैजस् शरीर के सहयोग से आत्मा आहार को पचाती है एवं रक्त, मांस, मज्जादि का निर्माण करके हुए शरीर तथा इंद्रियों का गठन करता है। सर्व प्रथम आत्मा आहार लेने, शरीर गन्त एवं इंद्रियों का प्रवृत्त करने में प्रवृत्त रहती है फिर श्याम के पुद्गलों को गृह्य कर अपने आप में श्वासोच्छ्वास की शक्ति एकत्रित करती है। एषान्द्रिय चीजें तो यही रक्त जाते हैं निरुचिने जीव होती है व भागा के पुद्गल से अपने आप में अभिव्यक्ति का शक्ति का सत्त्वं करता है। मज्जा पञ्चान्द्रिय मन के पुद्गलों से मन की रचना करने एक क्रियाशील रहता है। इस प्रकार आत्मा पर्याप्त पर्याप्त नाम कम के कारण ही शक्ति का विकास करता है आहार, शरीर, इंद्रिय श्वासोच्छ्वास, भाया एवं मन। यह ही पर्याप्ति के रूप में आलेखित किये जाते हैं।

जीव की प्राण शक्तियाँ

जाब को प्राण के शाब्दिक व्यूह में भी वहाँ वहाँ बसा गया है। प्राण अर्थात् प्राण से युक्त जो प्राणों से युक्त होते हैं वे प्राणी। प्राण से तात्पर्य है कुछ शक्तियाँ से जो आत्मा म उसरी स्थिति के क्रमानुसार होती हैं।

सत्रमे विरहित अवस्था वाला मसारी आत्मा के १० प्राण माने गये हैं। 'सत्रमे विरहित से स्पष्ट सत्रेत् पञ्चेन्द्रिय की ओर ही हो सक्ता है। पञ्चेन्द्रिय की १० प्राण शक्तियाँ मानी गई हैं-

$$५ इन्द्रियों का शक्ति + ३ मन वचन काया का बल + १ श्वासोच्छ्वास + १ आयुष्य = १०$$

अब जाँचो की प्राण शक्तियाँ निम्नानुसार हैं

चतुरिन्द्रिय की प्राण शक्तियाँ-

$$४ इन्द्रिया की शक्ति + २ वचन काया का बल + १ श्वासोच्छ्वास + १ आयुष्य = ८ प्राण शक्तियाँ$$

त्रोन्द्रिय—

$$३ इन्द्रियों की शक्ति + २ वचन काया का बल + १ श्वासोच्छ्वास + १ आयुष्य = ७ प्राण शक्तियाँ$$

द्वोन्द्रिय—

$$२ इन्द्रिया की शक्ति + २ वचन काया का बल + १ श्वासोच्छ्वास + १ आयुष्य = ६ प्राण शक्तियाँ$$

एकेन्द्रिय—

१ इन्द्रियकी शक्ति + १ काया का बल + १ श्वासोच्छ्वास
+ १ आयुष्य = १ प्राण शक्तिया

जिन पञ्चोन्द्रिय में मन होना है उन्हें सक्षी पञ्चोन्द्रिय कहते हैं तथा जिनमें मन नहीं होता वे असक्षी पञ्चोन्द्रिय आत्माण माने जाते हैं । सक्षी में प्राणशक्तिया १० होती ही हैं किंतु असक्षी मन न होने से केवल ९ प्राण शक्तियों से ही युक्त होती हैं ।

योनियां

आत्मा का विभिन्न भवों में शरीर सहित जन्म होता है । आत्मा जितने प्रकार के उत्पत्ति स्थलों से जन्म ले सकता है उनकी संख्या ८४ लाख निदिष्ट की गई है । समान रूप, रस गंध, स्पर्श वाले पुद्गला का एक ही योना में समावेश किया गया है । ८४ लाख की गणना इस प्रकार है—

पृथ्वीनाय	७ लाख
अपनाय	७ लाख
तेजनाय	७ लाख
वायुनाय	७ लाख
साधारण बनस्पतिकाय	१४ लाख
प्रत्येक बनस्पतिकाय	१० लाख
द्वीन्द्रिय	२ लाख
श्रीन्द्रिय	२ लाख

(४१)

चतुरिन्द्रिय	२ लाख
देवता	४ लाख
नारक	४ लाख
तिर्यच पञ्चेन्द्रिय	४ लाख
मनुष्य	१४ लाख



— १ —

क्या वनस्पति में
जीव होता है ?

हाँ जगदीशचन्द्र बसु ने
अपने अनुसंधानों के
बल पर वैज्ञानिक विचारधारा के
नई ज्ञाति दिशा दी। अर्वाचीन
व्यकरणों के माध्यम से उनके
विद्य के सम्मुख यह सिद्ध कर
लिया कि वनस्पति में जीव होता है,
प्राण होते हैं। वनस्पति भी मानव
के समान हृदय करती है, दृष्टि
होती है, सुगन्ध उत्पन्न करती है, अनुभूति
करती है।

हाँ बसु ने स्वयं एक विश्व

विद्यालय के छात्र समूह को सम्बोधित करते हुए स्वामी जी ने कि 'निस ज्ञान को मैंने अनामृत किया है उसे मुझमें अक्षय रहस्य सहित भारत का कोई भी जैन साधु प्राप्त कर सकता है। यथार्थ भी यही है। जैन दर्शन ने अर्पेन्द्रिय जाकों के रूप में फूल, पत्ती, गन्ध, वृक्ष आदि में आत्मा या चेतन प्राणियों का प्रावधान किया है उसे विज्ञान के द्वारा प्रयोग एवं पराग्रह की कसौटी पर कस कर ही प्रस्तुत किया गया। जैन धर्म का निर्देशन एवं प्रवर्धन मत रहा है कि वनस्पति में आत्मा का निवास है तथा उसमें ४ प्राण शक्तियां होती हैं। केवल वनस्पति ही नहीं बल्कि अग्नि, धातु, पृथ्वी एवं जल में भी जीव मानता है जिनकी लिंग भविष्य में अपेक्षित है।

दर्शन ने सदैव तर्क का सम्बल लिया है। वनस्पति में ज (आत्मा) होने के कुछ तर्क निम्नानुसार हैं —

। (१) आज जन्म लेने वाले बच्चे की लम्बाई पीन फुल हो है। ५ वर्ष उपरांत ३ फीट होजाती है एवं २० वर्ष की आयु घड़ी बच्चा ६ फीट का जवान बन जाता है।

आज एक टवल निर्माण किया गया उसकी उर्ध्व ४ फीट है। अत्र यदि प्रश्न किया जाय कि ५ वर्ष बाद कितने उ उची होजायगी एवं १० वर्ष के उपरान्त कितनी उची की वृद्धि होनायगी तो उत्तर प्राप्त होगा १० वर्ष उपरांत भी ५ फीट ही रहेगा।

लम्बाई चौड़ाई में अंतर क्यों नहीं होता ? स्पष्ट है कि जो चेतन है उसी में वृद्धि होती है । जड़ ज्यों के त्यों रहत हैं ।

उपरोक्तानुसार निधारण किया जाता है कि जो चेतन होते हैं उनके आकार में ही वृद्धि सम्भव है - जड़ पदार्थों के आकार में नहीं ।

तर्क की इस कसौटी पर धीन का परीक्षण करें । एक बीज जो आधा इंच है आज बोया जाता है, कुछ दिनों में अचुर पृष्ठन पर वह बीजा बनता है व एक फुल को हो जाता है । फुल धपा उपरांत वह वृक्ष बनकर फइ फीट उचा अपना सिर उठा लेता है । याने धीन ने वृक्ष का रूप ले लिया । उ चाई, लम्बाई चौड़ाई में वृद्धि हुई । उपरोक्त निधारण के अनुसार यदि वृद्धि उसी को होती है तिसमें आमा होती है वा निगायक रूप से धनस्पति में आमा का निवास है ।

(२) प्रचलन शक्ति चेतन में ही होती है-जड़ में नहीं । जिस प्रकार मानव योनि से मानव, हाथी की योनि से हाथी, सर्प की योनि में सप उत्पन्न होते हैं कभी रेल से रेल मॉटर से मोटर या हवाटनहान से हवाइ जहाज उत्पन्न नहीं हो पाये क्या कारण है ? स्पष्ट चेतन और जड़ का अंतर है ।

चूँकि धीन में से धीन जन्म लेना है अतएव धीन में आत्म शक्ति का निवास मान्य करना अनिवार्य है ।

(३) उसी शरीर के परमाणु एकमेक हो सके हैं जिसमें

आत्म शक्ति होती है । जैसे मानव शरीर से कुछ चमड़ी कटाली जाय तो फटा हुआ भाग जावन भर वैसे ही नहीं रहता शरीर के अन्य भागों के साथ कुछ दिना में एक समान हो जाता है ।

तमरी और यदि टेपल मे से कुछ भाग काट दिया जाय तो क्या उनका भाग कभा एकमेक होजाता है नहीं । कारण यही कि यह जड़ है ।

वृक्ष के विषय को देखें तो उस पर से जो छाल दूर कर दी जाती है उसका स्थान लेने वहा नयोन छाल अस्तित्वशोल धन जाती है । निर्विवाद वृक्ष म जात्मशक्ति है ।

उपरोक्त तर्कों के आधार पर यह सत्य निश्चित रूप से प्रतिष्ठापित किया जासकता है कि बनस्पति मे आत्मा का निवास होता है ।



जड़ का स्वरूप

पुणिमा के विपरीत स्वभाव
वन्त अमाश्या का जिस
प्रकार अस्तित्व है उसी प्रकार चेतन
के साथ जड़ का अस्तित्व है ।
आत्मा चेतन है जिसका स्वभाव
चेतना है लेकिन इसके विपरीत
स्वभाव वाला द्रव्य भी जैन दर्शन
कारों ने अचेतित किया है जो
अचेत है जिसमें प्राण नहीं होते,
जो निर्जीव होता है । इसका नाम
है जड़ अथवा पुद्गल, अजीव,
अचेत । जैसे श्वेत रंग का विपरीत

रजभाव वाला श्याम रंग है, मृदुता का तिक्तता, एव प्रकार का अघ्नार है उसी प्रकार चेतन का विपरीत जड़ है या दूसरे शब्दों में जीव का विपरीत अजीव है। जीव के साथ जड़ का संयोग होने पर ससार का संचालन तथा सृजन होता है। समग्र विषय जड़ पदार्थों से कूट कूट कर भरा हुआ है। उपरी आधार पर जड़ का निरीक्षण यही है कि इसमें चेतना नहीं होती। जिन पदार्थों में अनुभूति, संवेदना, भावना अथवा स्वयं स्पन्दन होता है वे पदार्थ चेतन कहलाते हैं ठीक इसी प्रकार दूसरा पहलु जिन पदार्थों में अनुभूति, संवेदना, भावना अथवा स्वयं स्पन्दन नहीं होता वे पदार्थ जड़ कहलाते हैं।

अजीव पदार्थ ससार में पाँच प्रकार के माने गये हैं पुद्गल धर्मात्मिकाय, अधर्मात्मिकाय, आकाश एव काल। ये पाँच और छोटा चेतन आत्मा इस प्रकार ये छह मिलकर 'पञ्चद्रव्य' कहलाते हैं जिनसे ससार की निर्मिति हुई है। ससार के सृजन एव संचालन हेतु ये ही उत्तरदायी माने गये हैं।



संसार का संचालन

(षड्द्रव्यों की व्याख्या)

संसार के सञ्चालन में पाच जड़ द्रव्या तथा एक चेतन द्रव्य का योगदान है। चेतन द्रव्य को विस्तार पूर्वक विश्लेषित किया जा चुका है। पाच जड़ द्रव्या का क्रमशः यहाँ सक्षिप्त परिचय प्रस्तुत है—

(१) पुद्गल

पुद्गल शब्द पुत् तथा गल दो भिन्न भिन्न पदा की उपलब्धि है। पुत् से मतलब है संयोग, संगठन, संश्लेषण एवं गल का

क्षय्य है विद्यमान, विवेकीकरण, विभाजन । निम वस्तु म
 केन्द्राकरण व विवेकीकरण, गठन व विगठन, संयोग व
 विराव दानों समय है यह पुद्गल है । पुद्गल रूप, रस, गंध
 व स्पर्श से युक्त होता है । नाशवान होता है । इसमें छेदन
 भेदन सहन - गलन की क्रियाएँ होती हैं । यह दृश्य होता है -
 दृष्टि से देखा जा सकता है । उसका रूप सूक्ष्म से लेकर घृष्ट
 तक होता है । शरीर, लकड़ी ये सभी पुद्गल के रूप हैं ।

जैसा कि जड़ होने के कारण ज्ञात ही है यह अज्ञात
 होता है । यह कर्म के रूप में आत्मा के साथ संयुक्त रहता है
 एवं इसी के कारण आत्मा को परिभ्रमण करना पड़ता है ।

(२) आकाश

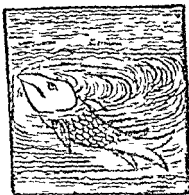
आकाश के रूप में एवं ऐसे द्रव्य का प्राग्धान किया गया
 है जो सर्वव्यापी है । ससार का कोई ऐसा कोना या स्थान
 नहीं जहाँ आकाश न हो । अनन्त तक इसकी सीमाएँ विस्तृत हैं ।
 आकाश अवकाश देता है, अवगाहन प्रदान करता है । ससार के
 समस्त द्रव्याओं को रहने के लिये जो स्थान या अवगाहन देता है
 वही द्रव्य आकाश है । यह अचेत, अरूपी और अक्षय्य है । यह
 अग्रह रहता है फिर भा वस्तुओं का अपक्षा से घटाकाश मठारण
 आदि पर्याय इसके माने गये हैं ।

आत्मा परिभ्रमण के समय आकाश में ही अपना स्थान
 ग्रहण करती है । आकाश अनन्त है लेकिन एक निश्चित माप
 तक ही आत्मा का परिभ्रमण हो सकता है यह अनन्त

जामरती। आकाश का निजता भाग आत्मा के गमनागमन हेतु निश्चित है वरन् लाकारा वगैरे जाता है भोगों को अलोककाम कहते हैं। अलाभाना म आत्मा का परिभ्रमण समथ नहीं है।

(3) धर्मास्तिहाय

आत्मा एव पुद्गल के आवागमन म धर्मास्तिहाय का एक माध्यम माना गया है। यत् अरुपा होना है तथा लोकारा तद्द्रव्य व्याप्त होता है। यह एक रूपायत द्रव्य है। तालाय में



मछली वहा तत्र गमनागमन करती है जज्ञ तत्र हि पाना होता है। गमनागमन का शक्ति स्वयं म एव का है रिणु पातो का माध्यम उग्रनी गति म महायत्र है उतो प्रकार धर्मास्तिहाय द्रव्य आत्मा क गमनागमन म गति रूपायत द्रव्य है। जहा पानी नहीं होता वगैरे मछली नहीं चासकती जज्ञ यर्मास्तिहाय द्रव्य नहीं होता आत्मा यात्रा नहीं कर सकता। वही कारण है कि आत्मा एव पुद्गल का आवागमन केवल लाकाराश वगैरे सामीत है।

(२) अपमूर्ति-व्याप

जहाँ धर्म और शक्ति का अभाव होता है वहाँ अपमूर्ति-व्याप के रूप में एक बुरा प्रवृत्ति और अज्ञानता का प्रभाव होता है। अपमूर्ति व्याप के कारण ही अज्ञानता और अंधाधुंध प्रवृत्ति का प्रभाव होता है। अपमूर्ति व्याप के कारण ही अज्ञानता और अंधाधुंध प्रवृत्ति का प्रभाव होता है। अपमूर्ति व्याप के कारण ही अज्ञानता और अंधाधुंध प्रवृत्ति का प्रभाव होता है।

अपमूर्ति व्याप के कारण ही अज्ञानता और अंधाधुंध प्रवृत्ति का प्रभाव होता है। अपमूर्ति व्याप के कारण ही अज्ञानता और अंधाधुंध प्रवृत्ति का प्रभाव होता है। अपमूर्ति व्याप के कारण ही अज्ञानता और अंधाधुंध प्रवृत्ति का प्रभाव होता है। अपमूर्ति व्याप के कारण ही अज्ञानता और अंधाधुंध प्रवृत्ति का प्रभाव होता है। अपमूर्ति व्याप के कारण ही अज्ञानता और अंधाधुंध प्रवृत्ति का प्रभाव होता है। अपमूर्ति व्याप के कारण ही अज्ञानता और अंधाधुंध प्रवृत्ति का प्रभाव होता है। अपमूर्ति व्याप के कारण ही अज्ञानता और अंधाधुंध प्रवृत्ति का प्रभाव होता है।

जहाँ धर्म और
अपमूर्ति व्याप का प्रभाव



पुण्य पाप या अच्छी बुरी प्रवृत्ति से कदापि नहीं हैं। यह इन पदा का प्रयोग द्रव्या के रूप में हुआ है तिनका उक्त अर्थों से कोई सम्बन्ध नहीं है।

(५) काल

काठ याने समय। जो क्षण क्षण धीतना है। भविष्य वर्तमान और वर्तमान भूत में जिसके कारण परिवर्तित होता है वह काल ही है। काल स्वयमेव वर्तन करता है। आज का शिशु कल किशोर, परसों युवक, बाद में प्रौढ़ और अन्त में वृद्ध कहलाने लगता है—यह किस कारण से वैचल काल के धीतने से, काल के वर्तन से, काल के व्यवहृत होने से? समय अरूपी है तथा यह सदैव बिना किसी अवरोध के गतिशील रहता है। इसे समय, क्षण, घड़ी, पल, दिन आदि से मापा जाता है। पारचात्य पद्धति के अनुसार इसके माप सेकिण्ड, मिनिट, घण्टे दिन होते हैं।



सुर्म की कन्दरायें

जै न गीर्ति गभी आमा
आ का मूय गियि में
दुद-बुद दुद गिरंजन एष गिराज
मानना है ऐंविन इही आमाओं
मे व्यवहज संसार एक कामाचकारी
नाच के वागानीमेत्र हरय मे
बम गही है । भिन्न भिन्न रग
भिन्न भिन्न रूप ! विविधताओं,
विषमताओं एवं विचित्रताओं का
बहुभार नम्य दुरान ! अलग अलग
आर्ति अलग अलग प्रार्ति ! कोइ
कुशा, कोइ गथा, कोइ विलो, कोइ

चीटो, कोट हावा, कोई देव, कोई दानव, तो कोई मानव !
 प्रयेर म पुन भयनर विरोधाभास ! सभी मानव भा समा
 तहों ! उहा आपत्ति तथा विपत्ति का भयकर त्रास तो कहीं सम्पत्ति
 एव समृद्ध का गरम चुम्बा डर ! एक ओर रोग व शोक का
 उत्पादन ता दूसरी ओर भोग की सामग्री का भरपूर संचालन !
 एक म क्ष नका लनालय समग्र ता दूसरे में मूर्खताका घट भी रोता !

सभा जानाआ को समान माना गया तो एक क्रोधा और
 दूसरा सौम्य क्यों ? एक हा मा के उदर से जर्म लेने वाला
 अग्रज श्यामवर्ण वाला और अनुज को और धर्य क्या ? एक ही
 मार्ग म बराबरा म बैठकर समान व्यापार करनेवाले एक दूकानदार
 म अपन मकान पर सात मजिले चढ़ा लेन का सम्पन्नता और
 दूसरा छप्पर टार करवाने म भी असमथ क्या ? बचपन के दो
 लंगोटिये यारों में पहिला अगूठा छाप फिर भा मगरमली शय्या
 पर आरंभ करना है जब नि दूसरा उपाधिकारा होने पर भी
 पुत्रपाथ पर रात्रि व्यतात करने हेतु बाध्य क्यों ?

“ एक हा कला म पढनेवाले ३० विद्यार्थिया म से कुछ के लिये
 शीघ्रता से त्रिपथ स्पष्ट होनाता है और अन्य के लिये पुरुषार्थ क
 वाद भी रैल रुकी ही रह जाता है ? किसी क बालकों की
 लम्बा स्तार लगा हुइ है और कोई अपने बश को चलाने के
 लिये पत्थर पत्थर दून मानकर भी खाली हाथ है ? किसी का
 विनास राष्ट्रपति प्रधानमन्त्री पद तक हो गया है तो कोई चपरामी
 बनकर नरल कदम चटना रहा है ।

कोइ जाना भर आट खानेके बाद भी लोक सभा

मैं नहीं पहुँच पाता और दूसरा नया नया रास्ता तो मैं
 शक्ति होकर ससद का पारपत्र प्राप्त कर लेता हूँ। एक ओर
 ८० वर्ष का उम्र होने के बाद प्रतिदिन मीठ मागने पर भा मृत्यु
 आज का नाम नहीं लेतो और दूसरी ओर जराती म ठाकर
 तारर नहीं क वही परलोक को प्रधान हो जाता है ? क्याचना
 है ज्ञान गल नहीं है कहां जाने का है तो चला जा है ।
 आदिर, यद् अतर क्यों है ? इन मयरी पृथुभूमि म फोड़ सगत्
 कारण जाना आवश्यक है। अनिवाय काई शक्ति है जिसके
 कारण विविधता का यह स्थिति उत्पन्न होता है ।

विश्व के दर्शन गायत्री विश्व का अस विविधता व विहड का म
 भयकर रूप से भटके हैं। सभी ने नई न काई न प्रस्तुत कर
 इसका समाधान करने का प्रयास किया है। साथ वैशेषिक दर्शन
 ने इसे 'अदृश्य' कहा है मामासक 'अज्ञ' कहते हैं और शास्त्र
 याग दर्शन ने 'आशय का जोर सजेत किया। वैदिक दर्शन
 माया अविद्या का प्रकृति का लेकर सम्मुख आयातया दर्शन ।
 न 'वामना का पत्र पढ़ कर तर्का का पगड़वा पर १५१,
 स्थितिचनाट। पाश्चात्य दर्शनकार सौभाग्य-सौभाग्य (इ. २५१) १५५५
 & Good luck) कह कर घात का टाट मय 'इत्यादि का म
 कता मानकर भा इस प्रश्न का हल किया गया कि २५१ १५५५
 न वैज्ञानिक पद्धति से अटल तथ्य प्रस्तुत किए हैं १५५५ 'कर्म
 ही इन मयने न्य उत्तरदायी है। कर्म ही मय मय १५५५ करवाता
 है, कर्म ही इन मयने पाछे मय मय १५५५ है। कर्म
 जड है, चेतन आत्मा पर वह अपना प्रभाव १५५५ १५५५

शक्तियों पर नियंत्रण करता है। आत्मा कार्य करती है और उसी के अनुसार उमर आत्म्य कर्मा का धरा उस पर होता है। कर्म का प्रत्यक्ष विचारधारा है। जैन दर्शन को वैज्ञानिक और व्यवस्थित रूप प्रदान करता है।

आत्मा अपने मूल स्वरूप में एकदम विन्दु अवस्था में है किन्तु कर्मा के कारण विस्तृत स्वरूप में व्याप्त होता है। आत्मा का अपना विद्यासिद्धशिला है लेकिन कर्म के दिग्भ्रम के कारण इसे शरीर रूपों धर्मशालाओं में अथवा शरीर लेना पड़ता है— जहाँ से आयुष्य होने का उसका विस्तार गोल होता है। आत्मा का अपना गुण आत्मा ज्ञान, आन्त दर्शन, आन्त सुख है किन्तु कर्म के चक्र-यूद्ध में फँसकर उसे अज्ञान, अध्याय, दुःखादि की पराधीनता स्वीकार करना पड़ता है। आत्मा का स्वयं का स्वभाव केवल आत्म रमणता है लेकिन कर्मा के जाल से वह पुद्गलों के पाले में फँसकर लगाता फिरता है।

जब राग द्वेषादि से उत्प्रेरित कार्य होता है तब आत्मा में कर्मवर्णना का स्वरूप होता है किन्तु उसके अनुरूप कर्म आत्मा में समा जाते हैं। आत्मा में कर्म समाते हैं साक्षात्करण हेतु जैन विद्वानों ने दूध और पानी का उदाहरण दिया है। जिस प्रकार दूध में एक एक पानी मिलाने पर वह दूध के प्रत्येक क्षण में व्याप्त हो जाती है वैसे प्रकार कर्म बंधन द्वारा पर वह आत्मा में सम्मिश्रित हो जाता है। कर्म के बंधन हस्तु दर्शन शास्त्रियों ने एक अन्य उदाहरण द्वारा प्रति स्पष्ट का है। जिसके अनुसार जिस प्रकार रज्जु कण्ड पर तल का बुद गिरने पर वह फैल जाती है तथा

कर्म के आठ प्रकार

गण मण्डल में सूर्य प्रगल्भता, तेजस्वीता का दिव्यता पूर्वक अपना रश्मियाँ बिखरते हुए परिक्रमा करता है। उनमें असाम उष्ण होती है, प्रबल प्रकाश होता है, तीव्र तेज होता है। य सभी निरपेक्ष बनकर समुदाय में युग्मते रहते हैं किंतु घटाओं के घिरते ही धरा तत्र पहुँचने वाला उसकी उष्णता मन्द हो जाती है, प्रकाश विरहित होने लगता है एवं तेज निरतेज हो जाता है।

जीव

मोहनीय

सम्पदादर्शन
बीजरागता

अमृतवीर्य
आवि

द्वयशता वसिन्ता
पराधानता
दुःखतादि

पुरानावरण
अमृत
दृशन

ज्ञानावरण
अमृत
ज्ञान

अशुद्ध
लघुता

अल्पिता

अक्षय
अस्थिति
आयुष्य

मोह

वैरिपक्ष
गतिद्वारि
जडियादि
यथाशुद्ध
सुभाष्य
सुभाष्यादि
सुभाष्य

कृत्यादि
दिक

निश्चालन

अन्निरति
राग-द्वेष

ताम-मोधादि

द्वयशता

ये सभा विद्यमान रहते हैं लेकिन मेघ सतह के कारण पृथ्वी तक आ रहा पाते। पृथ्वी पर उसका केवल वैभाविक स्वरूप दृश्यमान होता है। आत्मा म भा अनन्त ज्ञान की प्रचुरता है, अन्त दर्शन की विपुलता है, अनन्त सुख की समृद्धि है, सम्यग्मन की प्रगता है, अनन्तराय का तन्त्रीता है, अश्वय स्थिति की अचण्डता है, अरूपिना का अमृत है एव अगुरु लघुता की आभा है सिन्धु जब कर्म घटाण उमे आन्छादित कर देती है तो अज्ञान, अन्धापा, मिथ्यात्व, दुर्बलता, सुख दुःख, जन्म-मृत्यु, सांभाम्य-शीर्षाम्य, यग-अपयग, गति-जाति-शरीर की विकृतिया अपरा रूप दिग्गाना प्राग्भ करदेती हैं। ये घटाण जितनी घनी होता है उतना ही अन्धकार (या आत्मा का विकृत रूप) अधिक होता है।

आत्मा स्वयं म शत प्रतिगत शुद्ध स्वर्ण है। कर्मा का तावा उस की स्वर्णिता का ह्रास करते हैं। कर्मा के मुख्यतः ८ प्रकारों का क्षेत्र प्राप्त होता है जिनका उत्तर प्रकृतिया भिन्न मिल हैं। ये आठ प्रकार हैं ज्ञानावरणीय, दशनावरणाय, मोहनाय, अक्षराय, वेदनाय, आयुष्य, नम एव गात्र कर्म।

१ ज्ञानावरणीय

ज्ञानावरण शब्द से ज्ञानावरणाय की निर्मिति हुई है। ज्ञानावरण याने ज्ञान + आवरण, जो कर्म आत्मा में अवशिष्ट अनन्त ज्ञान पर आवरण डालता है वह ज्ञानावरणीय कर्म है। अज्ञान ज्ञानावरणाय कर्म का ही परिणाम है।

ज्ञान पाच प्रकार के माने गये हैं - (१) मतिज्ञान—बुद्धि, इन्द्रिय एवं मन से उपरत ज्ञान वाला ज्ञान (२) श्रुत ज्ञान—शास्त्र या शास्त्र से प्राप्त ज्ञान (३) अवधिज्ञान—भूत, भविष्य और वर्तमान में रूपा द्रव्यों में होने वाला परिणतिया का अतान्द्रिय ज्ञान (४) मन परबज्ञान—नासा के मन में उठने वाले विचार तरंगों की स्पष्ट अनुभूति (५) केवल ज्ञान—सम्पूर्ण ज्ञान सभी काल के द्रव्या एवं उनके गुणों व पर्यायों का दर्शन ।

इन पचनाना के प्रत्येक प्रवाह को जा कम अरुद्ध करते हैं वे क्रमशः मतिज्ञानावरणीय, श्रुत ज्ञानावरणीय, अवधि ज्ञानावरणीय, मन परबज्ञानावरणीय तथा केवल ज्ञानावरणीय के रूप में व्यक्त किये गये हैं ।

ज्ञानावरणीय कर्म का यथ ज्ञान, ज्ञान के हेतुआ एवं ज्ञान के उपररणा का अरुद्धना करने से होता है । कागज या पुस्तक को फाड़ना, चिह्न करना, जाना का सम्मान न करना, ज्ञानागधर को विना पहुँचाना, विनाश म दृढताल करवाना या उसमें भाग लेना आदि ज्ञानावरणीय कर्म का जासा में अवगाहन प्रदान करते हैं ।

ज्ञानावरणीय कर्म को तोड़ने के लिये ज्ञानाराधना एवं प्रचण्ड पुरुषार्थ आवश्यक है ।

२ दर्शनावरणीय

अज्ञान दर्शन का विपुलता से निपन्नता का रूप प्रदान करने

वाग्य म्म शान्तापरणाय है । आत्मा में दिव्यदृष्टि होते हुए भी हमारा दृष्टि सोमिन क्या है ? हम चेतन हैं फिर भी निद्रा आने का कारण क्या है ? नेत्र रहते हैं किंतु उनमें से ज्योति का अन्त ध्यात श्वा हो जाता है ? इन सभी प्रश्नों का उत्तर है दर्शनापरणाय म्म । दर्शनापरणीय कर्म आत्मा के दर्शन पर भी अपना बल प्रकट करता है । यह उस द्वारपाल के समान है जो द्वार पर तैरत होकर जनता को शासक के दर्शनों से वञ्चित करता है ।

दर्शनापरणीय कर्म की ९ प्रकृतियाँ मानी गयी हैं जिनमें ४ बोध सम्बन्धि हैं तथा ५ निद्रा सम्बन्धि ।

बोध सम्बन्धि दर्शनापरणीय कर्म में चक्षुदर्शनापरणाय (चक्षुआ से हान वाले बाध मं अपराध), अचक्षुदर्शनापरणीय (अन्तर्मुख बाध मं अवरोधक), अवधि दर्शनापरणीय (अवधि दर्शना का आच्छादन) केवलदर्शनापरणीय (केवलदर्शन का आच्छादन) का समावेश होता है ।

निद्रा के ५ प्रकार माने गये हैं (१) निद्रा (२) निद्रा निद्रा (३) प्रचला (४) प्रचला प्रचला (५) स्त्यानर्द्धि । व२ शयनावस्था विसम से जागृत दिव्या का सङ्ग उसे निद्रा कहते हैं । गराया युक्त निद्रा या गप्न, घोर गयन वस्था निद्रा निद्रा के अन्तर्गत है । गड़े या बैठे रूप लेना प्रचला है तथा चलते चलते ही निद्रासरिता म स्नान करते रहने को प्रचला प्रचला का रूप दिया गया है । रात्रि को गान् निद्रा में गडकर उसी अवस्था में कोई कार्य कररेना एव मोये का रहना स्त्यानर्द्धि की परिचान है ।

दर्शनावस्थाय कर्म का बंध दर्शन के साधनों एवं दर्शन के
अवरोधना करने से होता है ।

३ मोहनीय

माह के चिपकने परी पर निमल कर जब अपना स्वभाव
परिस्थितियों में परिभ्रमित होती है तो जन्म मोहनीय कर्म का
उद्भव एवं बंध हाता है । धीनराग नियति को रग, डं प, माह,
माया, ममता की मीनचा म बंध रगे रगता मोहनीय कर्म का
कार्य है । मय्यदर्शन केन्द्रीकरण हटाकर सयनाशीदर्शन (मिथ्या-
त्य) की ओर अग्रमाको मोहनाय कर्म प्रवृत्त करता है । गर्भी-कर्मा
म यह चिपट्ट माहा गरा है । भा मा को मद च कर रगे निर्य
प्रित रखने में यद् बम मरलतापूर्वक सकलता प्राप्त कर लेता है ।
रही कारण है कि मोहनाय कर्म के दोष व्याभाविक दिग्गाह दत्त
हैं । एवं हम ऊँचे दुरामद पूषक पकड़े रहते हैं । मोहनाय कर्म
का जाग्रमग विचार एवं व्यवहार जाना पर होता है । विराग
पर "दर्शन मोहनीय कर्म" घरा डलता है जबकि व्यवहारों का
ओर "चरित्र मोहनाय कर्म" बंध करता है ।

दर्शन मोहनाय क कारण मय्यस्त्र गण्डित होता है सन्धे
त्रैयगुरुधम पर अभ्रद्धा हाता है एवं विरवासा का अथ इधर
उधर गत्रों व गलियों म घूमता फिरता है ।

चरित्र मोहनाय प्राय, मान, माया, लोभ को अपना में
प्रविष्ट होने का पार पत्र देता है । वही नहीं दाम्य, रति अरति,
भय, मोह, जुगुप्सा, पुदयवेद, य वत्, नपुमकर्म व इना के
पार अपना प्रमाथ दिखाने हैं ।

४ अंतराय -

निनाथ निम्न जल प्रवाह को जिस प्रकार इट्टीय सिमेंट की दीवाल बाध बनकर रोक देता है उसी प्रकार अन्त शक्ति के मार्ग में अंतराय कर्म बाध बनकर रुका होता है। अन्तःकरण के अवरोध ' किसी भी कार्यगति को अवरोध बनकर अवरोध कर देना अंतराय कर्म का स्वरूप है।

अन्तराय को पांच प्रकारा विभक्त किया गया है (१) ज्ञानांतराय (२) लाभान्तराय (३) भागांतराय (४) उपभोगांतराय (५) वीर्यांतराय।

दान देने का इच्छा के समुच्चय व्यवधाने उपस्थित कर दान में स्थायक दानान्तराय है। लाभ की स्थिति में भा लाभ की प्राप्ति न होने लाभान्तराय है। भाग्य वस्तु के उपयोग में भागांतराय एवं उपभोग की वस्तु-जा के उपभोग में उपभोगान्तराय बाधा बनता है। शक्ति होने हुए भी कार्य करने में उदार्मानता वायान्तराय का लक्षण है।

५ -

जीवन में वेदना का व्यवहार लेकर वेदनीय कर्म कार्यरत होते हैं। सुख और दुःख की प्राप्ति इसी कर्म के कारण होता है। आत्मा अव्याबाध सुख की प्राप्तिगती है लेकिन पीड़नलिक आरूपण के कारण जो इष्टयोग में सुख एवं इष्ट विद्योग में सुख का संवेदन होता है वह वेदनायकर्म के कारण ही है।

शाता वेदनाय एवं अशाता वेदनाय इन दो प्रकारों का संभावित वेदनीय कर्म का क्रिया गया है ।

शातावेदनाय के कारण सासारिक सुख एवं समृद्धि की प्राप्ति होती है । परन्तु अशाता वेदनाय के कारण दुःख ही दुःख निग्राही होता है । विध्वंस जो वही सम्पन्नता एवं वही विपन्नता का विरोधाभास दर्शित होता है वह शातावेदनीय एवं अशातावेदनाय की ही प्रेरणा है ।

६ आयुष्य -

शरीर में आत्मा के आगमन एवं निर्गमन के मध्य की अवधि आयु कही जाती है या व्यावहारिक भाग में उर्जित कर ता जन्म और मृत्यु इन दो सिद्धुआ के बीच की दूरी आयु है । आयुष्य कर्म जितना मात्रा में उद्भूत होता है उतना ही जीवन एवं भय में प्राप्त होता है । आयुष्य कर्म का क्षय ही मृत्यु है । आत्मा का जन्म करण और मृत्यु के क्रम में इसी क्रम के कारण घूमना पड़ता है ।

७ नामकर्म -

चित्रकार की तूटिका से अलग अलग रंगा व आकृतियाँ के चित्र प्रकट होते हैं वैसे प्रकार नाम कर्म के कारण भिन्न भिन्न यानिया, रंगा, धरारा, इन्द्रिया का निमाण होता है, व्यक्ति को यथा अथवा अपयथा प्राप्त होता है, सौभाग्य-दौभाग्य के सिरा के मध्य आत्मा झूलता है ।

गौरावरण कालावरण, अच्छा घर भाडा घर, सुरूप-दुरूप चहारा व सभी नाम कर्म के परिणाम है ।

८ गोत्र कर्म :-

यद्य गोत्र नाच गोत्र की प्राप्ति को कारणभूत गोत्र कर्म है इसके कारण दण्ड, कूळ, परिवार एवं गोत्र का निर्धारण होता है गोत्र कर्म ही कभी टट्टा के शीत प्रदेश में तो कभी सहारा के रेगस्तान में फरक पता है और यही कभी अमरिका या भारत जैसे समृद्धशाही राष्ट्रों में भेजता है । गोत्र कर्म के कारण ही कभी महारानी की कूर में तो कभी सुदूर की कूर में म्याद प्राप्त होता है । गोत्र कर्म के कारण आत्मा उच्चता तथा नीचता के द्विच कोले खाता रहता है ।

जीवन कर्मों का कहानी इन आठ कर्मों के उदय एवं वध पर ही निमित्त हुई है ।



सृष्टिकार सम्बन्धि कल्पित कल्पना

संसार मोचिा विचित्रताए
जय गहन विचार विनि
मय के परचानू भा मुलङ्ग नहींपाई
कुछ भारतीय दर्शनकारों ने 'इश्वर'
के रूप में सृष्टिना की कल्पना
का, एव सर्वशक्तिमान, सर्वव्यापी
व्यक्ति विगेप का प्राग्धान किया
तथा संसार सचाग्न का सूत्र
उसोके हाथों में थमादिया । उनका
विश्वास रहा कि प्राणी कर्म करते
हैं किन्तु फल का प्राप्ति इश्वर की
इच्छा परहा निर्भर है । इसविचार

सरोता ने ससार का एक कठपुतली के खेल को रूप प्रदान कर दिया। मद्दारी जिस प्रकार कठपुतलिया के धागे खींच कर उन्हें त्रिपादाल करता है उसी प्रकार इश्वर भी धागे खींचता करता है समाज्य वर ससार के रगमन पर प्राणि अभिनय [३]। करते हैं। लेकिन इससे वास्तविकता के धगतल पर कई प्रकाश नष्ट नहीं जाते हैं।

जैसे यह इश्वर कौन है ? इसका निषाम क्या है ? इसका जग क्या हुआ ? यदि इश्वर ने ससार की सृष्टि की है तो इश्वर को सृष्टि निम्न की ? यदि इश्वर का सृष्टिकर्ता कोई है तो मायन यह कि सृष्टि से पहले भी ससार था ? यदि हा, तो जन समाज पाइले से हा था नय सृष्टि निम्न वस्तु की हुई ? इश्वर को इश्वर पद किसने दिया ? सृष्टि का निर्माण होने से पूर्व तो ससार था ना नहीं फिर इश्वर ने क्या घैठकर समा कठपुतलिया का घड़ा ? इश्वर का शरीर कैसा है ? यदि वह निःशरीर है तो जिना शरीर य इच्छिया न यह सन कार्य कैसे सम्पन्न कर लेता है ? जिना पर मौन रहना के सिवाय कोई विकल्प नोप नहीं रहता। मात्र कठपुतलिया का खेल वह वन से तर्क निष्ठासा जयना बुद्धि सुधा तत्र नहीं होसकता।

जैन दर्शन का इश्वर म विश्वास है कि तु इश्वर को सृष्टि कर्ता व रूप म मानने को वह कतई सप्यार नहीं है। उसका कथन है कि इश्वर एक पद है जिसका हर इंसान प्राप्त कर सकता है। उसका मायता है कि हर भात्मा म परमात्मा वन सन्ने का शक्ति निहित है, परमात्मा पद के द्वारा सभी के लिये

सु है। उसका विश्वास है कि इश्वर पर का विमान कि
 किम क माय पनीवन नहीं किया आत्मा इश्वर पर व्यापक
 इ मर के काड़े ने छतर देवगोन के प्राण तक का भरितार है
 कि पर अर्थात् आत्मा के सर्वाथ विज्ञान के द्वारा इश्वर पर तक
 पहुँच। इश्वर का सृष्टिधता के रूप में प्रतिष्ठित करने का प्रयत्न
 विरुध जो क्षीणों में उग और यही का ग है कि जैन धर्म को
 कुछ लोग पर दृष्टियों से देखन लग।

इश्वर बाद का ममार का कर्मा मानने या आ पं जन्मग
 जैन दर्शन में "कर्मवाद" का प्रमुख कारण पर ममार सत्ता
 का पर यैज्ञ निक पद्धति का प्रदर्शन किया। इश्वर आत्मा
 आत्मा पर कर्मों का यत्न होता है तथा उनका लक्षण हान पर
 कर्मों का भोग भी उन्हें ही करना पड़ता है। आत्मा यत्न है
 और कर्म नष्ट। कर्मासुसार आत्मा उच्च पदार्थों से मग्यधिन
 हास्य ममार म धूमती है। कर्मों के चरम लक्ष्य की क्रिया
 मयज्ञानि हानो मन्ती है जिसके लिये "इश्वर" जैसे विना
 बिदेता सहायक की आवश्यकता नहीं पड़ती। जब भी आत्मा म
 से कर्मों का क्षय, शयोपक्षय या उपवास हो जाता है आत्मा
 अपनी पूर्ण शुद्ध अवस्था को प्राप्त पर स्वयं परमात्मापद प्राप्त
 करने हेतु उद्योगमन करता है तथा सिद्धिदिना पर अपनी स्थिति
 प्रतापेता है। यही आत्मा का मोक्ष है और इस प्रकार मसार
 का मचालन हाता रहना है।

जैनधर्म इश्वर को एक पत्रिण एव परमेश्वर के रूप में
 म मानता है। उह उसे सामानिक कीचड़ के इश्वरता नहीं मन्ती।

ईश्वर के हाथ में सब कुछ दे देने से ही सभी प्रश्न हल नहीं हो जाते । यदि ईश्वर ही सर्वत्र संचालन का मूलधार है तो फिर वह अपने प्रभाव से सभी को सुखी क्यों नहीं कर डालता ? ससार में जो दुराचार, अनाचार, स्तन, रूठ आदि घलते रहते हैं क्या इन सभी में ईश्वर की भागीदारी रहती है ? ससार का एक पत्ता भी तो ईश्वर के बिना कम्पिन नहीं हो सकता फिर वह सब क्यों होता है ? और होता है तो वह रोफता क्यों नहीं है ? क्या वह नादान है, अयोध है, मृग्य है तो चुपचाप तमाशा देगता रहता है ? प्राणिया के जीवन से मन्त्रक कर उनके उत्पत्ती इस में आनन्द लेनेवाला क्या ईश्वरपद का अधिकारी हो सकता है।

सत्य तो यह है कि ससार केवल आमाराम और कर्मचंद के समझोते का परिणाम है । कोई ईश्वर जैसा कोई व्यक्ति नहीं है । वह केवल पद है जिसका प्राप्ति के लिये प्रयेज भव्य आत्मा पुत्र्यार्थ कर सगता है ।



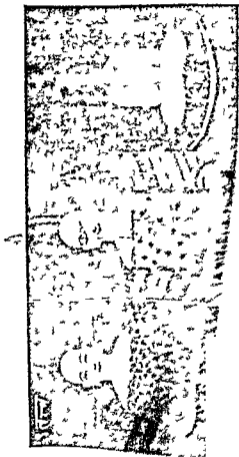
नवतत्व

जीव और अनाय इन दो तत्व स्वप्ना पर सम्पूर्ण ससार सदन का निमाण हुआ है। आत्मा (जीव) स्वयं परमात्मा है लेकिन मध्य में विनावीय र्म अपनी कील ठोके हुए है। आत्मा अपनी साधारण अवस्था से त्रिकसित होकर शुद्धिकरण करते हुए सर्वोच्च अवस्था तक पहुँचती है। इस अग्रिम अभियान तथा समाप्ति अवस्था में उसका सम्बन्ध ९ प्रकार के पदार्थ से होता है निम्ने

जैव दर्शन तत्त्व के रूप में उद्घोषित करता है ।

नगरतत्त्वा के परिचय के लिये निम्न प्रयोग प्रयुक्त किया जाता है ।

जिसी नगर का राक्षसी रीमा से सटा हुआ एक तालाब है जिसमें प्राकृतिक स्रोत से पानी आता है एवं नगर की गद्दी गटरा का मैला भी वहीं जाकर एकत्र होता है । रज्ज और गन्दा दौना पाना अन्दर ही अन्दर सम्मीश्रीत हो एकत्र होत रहे हैं । थोड़े समय उपरत तालाब की दुर्गंध वायुमण्डल में व्याप्त होने लगा । समोपत्यर्ती वस्ता के नगरिकों ने व्यथित हो एक प्रार्थना पत्र नगर पालिका को प्रस्तुत कर आवेदन किया कि उनके स्वास्थ्य पर घुरा प्रभाव पड रहा है अतः तुरत सफाई करवाइ जाय । नगर पालिकापक्ष ने प्रार्थना पत्र जन स्वास्थ्य अधिकारी की आर भेजकर विवरण मागा । अधिकारीचा निर्दिष्ट स्थल पर गये वध निरीक्षण कर अध्यक्ष को तीन घाता सहित विवरण दिया । (१) दुर्गंध तालाब में है (२) दुर्गंध का दूर करन के लिये पहिले बाहर से पाना व गद्गा छाने वाले द्वारों को त्कनद्वारा बन्द किया जाय (३) एकत्र गद्गा पोटेशियम परमगनेट (लाल दूधाइ) के द्वारा दूर का जाय । अध्यक्ष ने सचिव की ओर फाइल भिजवाते हुए सार प्रकरण को व्यवस्थित रूप में प्रस्तुत करने की आज्ञा दी । सचिव न प्रकरण के निम्न विचार बिन्दु निर्धारित कर विवरण तय्यार किया (१) तालाब का पानी (२) तालाब के समीप बस्ती (३) अच्छे पानी का आगमन (४) नगर की गद्गी का आगमन (५) दाना का सम्मीश्रण (६) दौना के आगमन के द्वार



(७) द्वारों को अवरुद्ध करने हेतु ढक्कन (८) लाल दवाई (९) शुद्ध जल ।

अब हम नाशय के रूप में आत्मा की कल्पना करें । तालाब का पानी याने एरेट्रिनीय, तालाब के समीप वस्तु याने अनाय (जड़), शुद्ध पानी का आगमन याने आत्मा में अच्छे कर्मों का आगमन 'पुण्य', गंदे पानी का आगमन याने बुरे कर्मों का आगमन 'पाप', दोनों का सम्माक्षण याने अथ । आत्मा में पाप और पुण्य के जान के द्वारों का नाम निर्दिष्ट किया गया है आश्रय, आश्रय को अवरुद्ध करने के लिये ढक्कन याने सवर, लाल दवाई का प्रयोग याने कर्मों का समाप्त करने की त्रिगु-निचरा, शुद्ध जल की प्राप्ति याने आत्मा की शुद्धात्म्या मोक्ष । इस प्रकार जाय अजीय, पुण्य, पाप, आश्रय, सवर, वध, निचरा और माक्ष ये ९ नाम नव तत्व के रूप में अन्वेषित किये जाते हैं ।

(१) पानी	—	जीव
(२) वस्तु	—	अनाय
(३) अच्छा पानी	—	पुण्य
(४) गन्दा पानी	—	पाप
(५) सम्मोक्षण	—	वध
(६) आगमन द्वार	—	आश्रय
(७) अवरुद्धक (ढक्कन)	—	सवर
(८) लाल दवाई (पोटशियम परमेगनट)		निचरा
(९) शुद्ध पानी	—	मोक्ष

इन तन्त्रों का सन्निभ वर्णन इस प्रकार है —

- (१) चार चैतना लक्षण वाला अपने मूल स्वरूप में युद्ध स्थिति वैभारिक अवस्था में सासारिक परिभ्रमणशील।
- (२) अंचार अचेत, निर्जीव जिसमें किसी प्रकार का अनुभूति या संवत्ता नहीं होता, यह नाशवान है। पुराण, जागण, धम, अधर्म एवं काण्ड इनका उदाहरण है।
- (३) पुण्ड्र शुभ कर्म विनया जागमन आत्मा में होता है पर विनये अन्य से साधन-सामग्री सम्पन्न के सुख का उपलब्धि होता है।
- (४) पाप अशुभ कर्म विनया जागमन आत्मा में होता है पर विनय अर्थ से विपन्नता-भाग-अपन्न वस्तु का सामना करना पड़ता है।
- (५) बध- कर्मा क आत्मा क साथ सम्पन्न इन का प्रतिक्रिया का नाम बध है। विपन्न प्रकार तू में पाया ज्ञान हो जाता है आत्मा में भावों का प्रकाशन हो जाता है।
- (६) जाग्रत विन कारणों अथवा हतुओं से आत्मा क कर्मा का आगमन होता है उन्हें पञ्च कर्तव्य है।
- (७) सवक कर्म के हतुओं (जाग्रत) का "सवक" अवस्था करता है। सवक कर्म उत्पन्न होने पर कर्मों का बध रक्त जाता है।

- (८) निर्जरा निजरा के कारण आत्मा में अवशिष्ट कर्मों का क्षय होता है । तप, व्रत आदि निर्जरा के अन्तर्गत आते हैं ।
- (९) मोक्ष आत्मा का परमात्मरूप में परिमार्जन । इस अवस्था में आत्मा कर्मों से विलकूल निर्युक्त होती है । वह अपना शुद्धावस्था को प्राप्त कर निरन्तर निरामार धन सिद्धशिला पर प्रतिष्ठित हो जाती है ।

टिप्पणी

दिगम्बर मान्यता के अनुसार तत्वा के सात प्रकार सन्दर्भित किये गये हैं— जीव, अजीव, धर्म, आश्रय, सबर, निर्जरा तथा मोक्ष । दिगम्बर शास्त्रकारों ने पुण्य व पाप का धर्म के अन्तर्गत समावेश किया है ।

पंच महाव्रत

हिंसा, अशान्ति एवं
अधर्म के तत्त यत्ता-
वरणमें भगवान् महावीर ने आशि
भूत होकर पंच महाव्रतों की गगत
गर्भना के साथ उपदेशामृता की
वृष्टि की। फलतः दया, करुणा और
सद्भाव पर हरियात्री मानव
मस्तिष्कों के मैदानों में फलपत्तों
हुई। यही पांच महाव्रत आचार
सहिता के रूप में मानव समाज
के सम्मुख प्रस्तुत हुए जिनमें
प्राणी-मात्र के सह अस्तित्व एवं

रहा है। हार्द को निकाल कर कोई जीवित नहीं रह सकता।
 जहाँ में मृत्युता विवेक एवं लोक प्रियता होना चाहिये इसा से
 ज्ञान का संचरण होता है यहा कारण है कि जैन सरकृति सन्धि
 यहा प्रतिष्ठित रमन का उपदेश प्रदान करता है।

सोसग महाव्रत है जन्तेय-याने चोरा का निषेध। "अपना
 नु अपना एवं दूसरों का मनु दूसरों का" जन्का निर्भिक्षता
 के परिपालन जन्तेय है-समता और मोह छक्ति का नियत में
 परिवर्तन करते हैं किन्तु नियत का नियति के नियमा
 क अनुस्य रमना ही जन्तेय का आदेश है। अन्ते सम्पत्ति का
 यदि हम पूरा रखा करना चाहते हैं तो अनियत हम जन्का की
 सम्पत्ति का भा सारक्षण रा होगा जिसा वस्तु जो जिना प्रच्छा
 के स्पर्श भा न करना यह इस प्रा का मूर्मता है।

सभा व्रतों में सर्वथा एवं उत्तम व्रत के रूप में ब्रह्मचर्य को
 अग्रगण्य स्थान दिया गया है। ब्रह्मचर्य के परिपालन द्वारा व्यक्ति
 अपनी शक्तियों का सूचनामरु क्षेत्र में उपयोग कर सकता है।
 जैन सरकृति में साधुओं के लिये पूर्ण ब्रह्मचर्य का निधारण है
 किन्तु श्रावका का सीमा स्वस्वागमन के बाद प्रारम्भ का गद है।
 विकारों का आग निरवासा को मरु कर देता है जिसा भा रण्य
 में किसी भी विपरीत यौनशील की ओर विट्टिन् शक्ति से न दृग्मा
 हा ब्रह्मचर्य का पालन है।

अपरिग्रह एक पवित्र समझौता है जिसका पालन हर व्यक्ति
 को प्राणा हित में करना चाहिये। समग्रक्षोरी, अधिक सचय आदि

दोषों को दूर कर अपना इच्छाओं का परिमाण करना अपरिमह की गुह्य भावना है । आकाशाएँ आकाश की तरह अनन्त हैं इनकी पृथि कभी नहीं होती । तृष्णा का पेट सुरसा की तरह अतृप्त है । तृष्णाका का तृप्ति किसी भी स्थिति में सम्भव नहीं । इच्छाएँ तृष्णागिनी की तरह फैलती हैं । मानव समाज में समानवाद की भावनाका को बढवता करने हेतु जैनधर्म का अपरिमहयाद ग्रहित किया जाय । अपरिमहयाद उदार है वह व्यक्ति को स्वय भावना से त्याग करने हेतु अप्रेरित करता है । अपरिमहयाद में त्वाक, बलप्रयोग अथवा हिंसा को स्थान नहीं है इसकी नींव स्वय निराकरण की भावना पर रखी हुई है ।



मुक्ति का राजमार्ग

जैन धर्म का राजमार्ग है
रत्नप्रय । रत्नप्रयी याने

आचार, विचार एवं व्यवहार की
शुद्धि का प्रियेणो सगम । रत्नप्रया
या दमरा नाम है मुक्ति का पथ,
निम पथ पर भ्रमण होने से
मुक्ति का महत्वाकांक्षा मनबूत
बनता है एष जिसका चरम बिन्दु
पर मुक्ति रूपा विजय स्वप्न है ।

रत्नप्रयी धरातल के तीन केन्द्र
हैं- सन्न्यग्ज्ञान, सम्यग्ज्ञान एवं
सम्यक् चारित्र्य । सम्यग याने
सही ज्ञान, सही कृत्य एवं सही

सहा ज्ञान के तात्पर्य है तब प्ररूपज्ञान । आत्मा एवं
 कर्मा का सम्बन्ध, जीवन का परमोच्च लक्ष्य, परमोच्चलक्ष्य की
 प्राप्ति के हेतु आदि का सर्वज्ञ सम्मत परिचय । शास्त्रकारों ने
 उद्धारण प्रदान किया है 'मात्स्य फल विरति' ज्ञान वही जिसका
 फल विरति के रूप में प्रकट हो । विरति याने पापा का प्रतिज्ञा-
 पूर्वक परित्याग । मात्र ज्ञान तो अस्वपिंजर की तरह है-तो सही
 ज्ञान उसे हा रूढ़ा जायगा जो मुक्ति के मार्ग की ओर प्रेरित कर
 सके । जिस ज्ञान का परिणाम सामारिक वासनाओं अथवा विषय-
 विचारा का व्यवहार हो वह जैन ससृष्टि की भाँषों में सही ज्ञान
 के रूप में मन्योपिहित नहीं किया जा सकता है । आत्मा में अनार्या
 अज्ञान है तबकि आत्मा में आर्या ज्ञान है । सम्यग्ज्ञान अनार्यों
 को क्षय कर देता है । अर्या के दुर्ग का निर्माण करता है ।

मुक्ति ससृष्टि के भव्य राजप्रासाद का दूमरा और सबसे महत्व
 पूर्ण जागारतभ है सम्यग्दर्शन । सहीदर्शन याने सही श्रद्धा, निर्मल
 तत्त्वज्ञान । सम्यग्दर्शन व्यक्तिवाद का आग्रह नहीं करता, साम्प्र
 दायवाद को सखल नहीं बनाता, दुराग्रह को प्रश्रय नहीं देता है ।
 इसका यजन है कि जो सच्चे देव है, सच्चे गुण हैं, सच्चा धर्म
 है सभी पर विश्वास का अक्षे-त्रीकरण करो । सच्चे देव याने सही
 माने के देव-जो सामारिक बंधनासे दूर होकर स्वयं मोक्षको प्राप्त
 कर चुके हैं । सच्चे देव वही जिनने जायन के सर्वाच्च उद्देश्य की
 परिप्राप्ति करली है जो धीतराग, मुक्त या अरिहंत के रूप में
 परिमार्जित हो चुके हैं । सम्यग्दर्शन इधर-उधर, उपर नीचे के
 दृष्टा दृष्टताओं का उपासना का निषेध करता है । जैन दर्शन का

प्रबल प्रतिपादन है कि यदि अरिहन्त बनना है तो अग्निहन्त की आराधना ही यह संभवे बना सकती है । सच्चे गुरु का अर्थ है वह गुरु जो सहा देव का दर्शन करवादे, धीधन को सहा मार्ग की ओर मोड़ दे या जो सत्य और असत्य का विषेःपूर्ण विरलेपण कर सके । जैन संस्कृति इन गुरुओं को मन्था गुरु मानने की उपाय नहीं जो सासारिक क्रीचड़ में स्थित भी पसे हुए हैं और दूमरों को भी उसी में र्गिच लेना चाहते हैं । बोर, एड करने वाले मयनल पर सन्तानोपत्ति करवाने वाले, मट्टे के अफ बतलाने वाले, रूपये पञ्च करने वाले, पत्निया मग्ने वाले या दाम्-गात्रे-घाड़ी सिगरेट-भग आदि का उपयोग करने वाले जैन इतिहास के अनुसार कभी गुरु नहीं मान्य हो सकते । सच्चा गुरु त्यागी, तपस्वी सही राष्ट्र धाग एवं स्व-पर के कल्याण का भावना स रमा होना चाहिये । सच्चे धर्म पर श्रद्धा तीसरी आवश्यकता है सम्यग्दर्शन की । सच्चे धर्म का सचेत उस धर्म से है जो दाग, पागड़ एवं निगा क्रियाकण्ड का प्रथम नहीं देता हो जिसका अन्तिम लक्ष्य शुद्ध हो एवं साध्य प्राप्ति के साधनों की पवित्रता पर भी जो जोर देता हो, जो अविशवादी तथा त्रिपालाध्य हो । धर्म का परिभाषा निम्नोक्तों ने इस प्रकार का है—जो मोक्ष एवं कल्याण मार्ग को पुष्ट करता हो वही धर्म है सही धर्म आराधक को उसकी उत्कृष्ट स्थिति तक पहुँचाने में समक्ष होता है । सही देव, सहा गुरु एवं सही धर्म की मान्यता ही सम्यग्दर्शन का मूल प्राण है ।

सम्पद् चारित्र्य का रहस्य स्पष्ट ही है जाचार एवं क्रिया भी शुद्ध आशय से युक्त होना चाहिये । शुद्ध आशय यान त्याग, तप,

धर्म प्रवृत्ति सभी की पृष्ठभूमि में आत्म विकास का सागर ही
आँधीलित दर्शित होना चाहिये । आत्मविकास की उच्च भावना
के साथ ही प्रवृत्ति मार्ग पर असर होना चाहिये ।

भग्नोपि उमास्वातिजो मे अनुसार 'सम्यग्दर्शन ज्ञान चरित्राणि
-मोक्षमार्ग ; सम्यग्दर्शन ज्ञान एव चरित्र ही 'मोक्ष मार्ग है ।



